कुशललाभ

ब्रजमोहन जावलिया

H
817.509 2
K 968 J

भारतीय
साहित्य के
निर्माता

H
817.5092
K968J

अस्तर पर सूचिकला के प्रतिरूप में राजा शुद्धोदन के दरबार का दृश्य छपा है—जिसमें तीन भविष्यवक्ता भगवान बुद्ध की माँ—रानी माया के सपने की व्याख्या कर रहे हैं। उनके नीचे बैठा लिपिक व्याख्या का विवरण लिख रहा है। भारत में लेखन-कला का संभवतः सबसे प्राचीन और चित्रात्मक अभिलेख।

नागार्जुनकोण्डा, दूसरी सदी ई०
सौजन्य : राष्ट्रीय संग्रहालय, नयी दिल्ली

भारतीय साहित्य के निर्माता

कुशललाभ

लेखक

ब्रजमोहन जावलिया

साहित्य अकादेमी

Kushallabh : A monograph in Hindi on mediaeval Rajasthani poet by Brajmohan Javalia, Sahitya Akademi, New Delhi (1993) Rs.15

© साहित्य अकादमी

Library IIAS, Shimla
H 817.509 2 K 968 J
00116069

प्रथम संस्करण : 1987
द्वितीय संस्करण : 1993

साहित्य अकादेमी

H
817.5092
K96J

प्रधान कार्यालयः
रवीन्द्र भवन, 35, फिरोजशाह मार्ग, नई दिल्ली–110001
फोनः386626, 386621, 386623, 386088

विक्रय विभागः
'स्वाति' मन्दिर मार्ग, नई दिल्ली–110001 फोनः 353297

क्षेत्रिय कार्यालयः
जीवनतारा बिल्डिंग, चौथा तल, 23ए/44 एक्स डायमंड हार्बर रोड़, कलकत्ता 700053
फोनः 497405
गुणा बिल्डिंग, 304–305, अन्नासलाई तेनामपेठ, मद्रास 600013 फोनः454080
172, मुम्बई मराठी ग्रंथ संग्रहालय मार्ग, दादर, बम्बई 400014 फोनः4135744
ए.डी.ए. रंगमदिर, 109- जे.सी.मार्ग, बंगलौर 560002 फोनः 221412

मूल्यः पन्द्रह रूपये

Indian Institute of Advanced Study
116069
17.11.04
SHIMLA

मुद्रकः
चमन एन्टरप्राइजिस
आर.69/1 रमेश पार्क, लक्ष्मी नगर, दिल्ली

विषय-सूची

1	तद्युगीन राज और समाज	9
2	जीवनवृत्त और काव्य-सृष्टि	15
3	काव्य रूप और नामकरण	19
4	काव्यों तथा कथानकों की परंपरा और उनका सार संक्षेप	25
5	साहित्यिक अध्ययन	54
6	समाज और संस्कृति	77
	परिशिष्ट-I	89
	परिशिष्ट-II	102
	परिशिष्ट-III	103

1

तद्युगीन राज और समाज

विदेशी आक्रमणों का शताब्दियों तक सामना करने वाला भारतवर्ष खण्ड-खण्ड होकर अब पूरी तरह विदेशी दासता के चंगुल में फँस चुका था। देश में सर्वत्र अशान्ति और अस्थिरता का साम्राज्य व्याप्त हो चुका था। वंशगत इकाइयों में विभाजित राजस्थान के शासक केन्द्रीय सत्ता या अपने पार्श्ववर्ती विधर्मी शासकों से पराभूत हो कभी उनके आधीन हो जाते और स्वाधीन होने की चेष्टा भी कर लेते थे। राणा सांगा के छत्र के नीचे संगठित होकर एकछत्र राजपूत-साम्राज्य का उनका स्वप्न भी जब बाबर से मिली पराजय के कारण भंग हो गया तो एक-एक कर सभी ने मुग़ल शासकों की शरण ले ली।

अपनी उदार, सहिष्णुतापूर्ण तथा कुशल राजनीति के सहारे इन राज्यों के प्रति सुनियोजित नीति बनाकर अकबर ने इन्हें केन्द्रीय सत्ता के साथ संयुक्त करने का प्रयास किया। उसने राजपूत राजाओं से वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित कर सहयोग लिया। राजनीतिक दृष्टि से शून्य और आर्थिक दृष्टि से विपन्न राजाओं और उनके राजकुमारों को बादशाही सेना में मनसब देकर उन्हें सदा के लिए अपना गुलाम बना लिया। साधारण राजपूतों को भी शाही फ़ौज में भर्ती कर उन्हें आकर्षक रोज़गार दिये गये। उसकी इसी नीति के कारण राजस्थान में अपेक्षाकृत शान्ति व्याप्त हो पायी। मेवाड़ का राजवंश ही एकमात्र ऐसा राजघराना रह गया था, जिसने अपनी आज़ादी की रक्षा के लिए अकबर की नींद हराम कर दी।

अकबर से सम्बद्ध हुए जयपुर, जोधपुर, बीकानेर और जैसलमेर आदि राजाओं ने अकबर के सैनिक अभियानों में पूरा योग दिया और लूट के माल से स्वयं को लाभान्वित किया। इन अभियानों में साथ चलने वाले व्यापारी और शिल्पी भी साधन-संपन्न बन गये। सैनिकों ने युद्ध-कला विषयक अपने अनुभवों में वृद्धि की। तोप, बन्दूक आदि नवीन अस्त्रों के निर्माण और संचालन में उन्होंने दक्षता प्राप्त की। लोगों में दूर देशान्तर तक व्यापारिक यात्राओं के प्रति रुचि जाग्रत हुई।

मुग़लिया शान शौक़त और जीवन-पद्धति से निकट के सम्पर्क ने राजपूत

राजाओं की जीवन-पद्धति में आमूलचूल परिवर्तन कर दिया। उनकी वेश-भूषा, बोल-चाल, रहन-सहन तथा दरबारी शिष्टाचार के तौर-तरीक़े सर्वथा बदल गये। उनके दृष्टिकोणों में व्यापकता आई, अनुभव में वृद्धि हुई और जीवन के प्रति लालसा भी बढ़ी। राजकुलों से सम्बद्ध पंडित, परिचारक, कवि, वैद्य, अन्तः-पुरवासी रानियों और दासियों तक में मुग़लों के सम्पर्क से अभूतपूर्व परिवर्तन आ गया।

राज्यों में बराबरी की भागीदारी का दावा रखने वाले और समय-समय पर राजाओं के विरुद्ध विद्रोह का झंडा खड़ा करने वाले सामन्त अब नरेशों की प्रभु-सत्ता में वृद्धि और उन पर केन्द्रीय सत्ता की कृपा से स्वामीभक्त बन गये। राजाओं के निरन्तर शाही सेवा में बाहर रहने के कारण उनके आमात्य, मुसाहिब आदि अधिकारीगण प्रबल होकर राजाओं के घरेलू मामलों तक में हस्तक्षेप करने लगे। राजसत्ता और राज्यकोष के बल पर निहित स्वार्थ वाले लोग अपने प्रभुत्व और समृद्धि में वृद्धि करने लगे।

मुग़लों के साहचर्य में राजाओं के द्वारा बहुपत्नी प्रथा को बढ़ावा दिए जाने से अन्तःपुरों की शान्ति भंग हो गयी। ज्येष्ठ पुत्र के उत्तराधिकार की परम्परा-गत व्यवस्था केन्द्रीय सत्ता के हस्तक्षेप के कारण टूटने लगी। टीके का दस्तूर बादशाह के निर्णय के अधीन हो गया। राजा स्वयं अपनी सर्वाधिक प्रिय रानी के पुत्र को उत्तराधिकार देने लग गये।

सुरा, सुन्दरी और अफ़ीम का सेवन तथा रात-दिन शिकार में रत रहना ही अब राजाओं का काम रह गया। शिक्षा और संस्कृति से उनका कोई सम्बन्ध नहीं रहा। राजाओं के मनोविनोद के लिए नियुक्त पातरों और कंचनियों तक को अन्तःपुर में रखैलों के रूप में रखा जाने लगा।

राज्यों की आन्तरिक व्यवस्था को संचालित करने वाला वैश्यवर्ग राज-परिवारों को अपनी राजनीतिक कुटिलता के पाश में आबद्ध करने लगा। उसका एकमात्र ध्येय अव येनकेन प्रकारेण अपने स्वार्थ की सिद्धि ही रह गया था।

राजमहिषियों में धर्म-कर्म, व्रत-उपवास, कथा, भागवत, भजन-पूजन की रुचि में अभिवृद्धि हुई। राजपरिवार की पासवानों, पडदायतों और दासियों तक ने भक्ति मार्ग का अनुसरण किया। नाथ पंथ, निर्गुण, निम्बार्क और वल्लभ सम्प्रदायों को राजपरिवारों ने प्रश्रय दिया तथा राजमहिषियों और राजपरिवार की महिलाओं ने अनेक मन्दिरों का निर्माण कराया।

आये दिन वैश्यवर्ग के बढ़ते वर्चस्व के कारण राजपूत नरेशों ने जैन धर्म के प्रचार में भी सहयोग दिया। मुस्लिम सत्ता के सर्वथा अधीन हो जाने के कारण उन्होंने अपने राज्यों में मस्जिदों, मजारों व अन्य मजहबी स्थानों के निर्माण में भी पूरा सहयोग दिया। अकबर की धार्मिक सहिष्णुता की नीति के कारण सभी धर्मों

के अनुयायी निर्भय होकर अपने धर्म का पालन करने लगे। यहां तक कि अकबर के हरम में भी राजपूत परिवारों से व्याही गयी बेगमें हिन्दू देवी-देवताओं की पूजा आराधना करती थीं। अकबर की इस नीति का लाभ लेकर हिन्दू नरेश भी अपने पर्व निर्बाध रूप से मनाते और राजदरबार करते रहे।

चारण कवियों का प्रभाव दिन प्रतिदिन बढ़ता जा रहा था। वे राजाओं से लाख पसाव, कोड पसाव, संज्ञक पुरस्कार और दानस्वरूप सांसण प्राप्त कर रहे थे। उनके विरुद काव्यों को अधिकाधिक सम्मान मिलने लगा। वे अब अपने रीति रिवाज और शिष्टाचार में राजपूतों के अनुकूल परिवर्तन कर स्वयं को उन्हीं के स्तर का समझने लगे थे। विवाहादि अवसरों पर दान के लिए हठ और सामूहिक धरनों द्वारा राजपूतों को विवश करने की उन्होंने नीति अपना ली। इच्छानुकूल दान न देने वालों की वे निन्दा करते थे। कई एक चाटुकार विरुदगायकों को मुक्तहस्त दान देकर राजपूत दरिद्रता का आह्वान कर रहे थे। साधारण परिवारों में जन्मी कई एक चारणी महिलाओं की सिद्धियों की गाथाएँ समाज में श्रद्धा के साथ कही-सुनी जाती थीं। उन्हें शक्ति के रूप में प्रचारित-प्रसारित किया जा रहा था।

सत्य, धर्म, शौर्य और क्षत्रियोचित गुणों को प्रोत्साहन देने वाले विद्वान चारणों को सभी सम्मान की दृष्टि से देखते थे। कई एक विद्वान चारण स्वयं राजपूतों के साथ कन्धे से कन्धा लड़ाकर युद्धों में भाग लेते थे। गौ, ब्राह्मण और अबला की भाँति चारणों को भी अवध्य माना जाता था। राज्यों द्वारा प्रदत्त करों में छूट का लाभ उठाकर चारण व्यापार में संलग्न हो रहे थे। चारणों की भाँति ही काव्य-रचना में दक्ष रावल, मोतीसर और राणोमंगा जैसी जातियाँ भी समाज में विद्यमान थीं। भाटों और कवीश्वरों की एक और काव्यकर्मी जाति 'पिंगल' में कविता करती आ रही थी। चारणों की भाषा डिंगल के नाम से ज्ञात थी। इनके व्यावसायिक संघर्ष के कारण दोनों का साहित्यिक द्वन्द्व प्रसिद्ध है। चारणों का वर्चस्व उत्तरी पश्चिमी क्षेत्र में था, और भाटों का पूर्वी और दक्षिणी राज्यों में।

जैन धर्मावलम्बी वैश्यवर्ग में ओसवाल नाम से जानी जाने वाली शाखा, जो अपनी उत्पत्ति राजपूत राजवंशों से ही मानती है, व्यवसाय के अतिरिक्त शासकों के निकट सम्पर्क के कारण अधिक प्रभावशाली बन गयी थी। वैश्य होते हुए भी वे सैन्य-संचालन करते थे। वैष्णव धर्मावलम्बी राजपरिवारों से सम्बन्धों के कारण तथा हिन्दू-बहुल समाज में रहने के कारण वे अपने समाज में जैन धर्म का पालन करते हुए भी वैष्णव धर्म के प्रति भी आस्थावान थे। विवाह सम्बन्ध इनके जैन ओसवालों में ही तय होते थे।

ब्राह्मण अपने धार्मिक एकाधिकार के कारण सर्वमान्य थे। जीवन-यापन की दृष्टि से वे क्षत्रिय या वणिक वर्ग पर आश्रित थे। अध्ययन, अध्यापन, ज्योतिष,

वैद्यक, कर्मकाण्ड, कथावाचन, भजन कीर्तन, देवपूजन आदि के द्वारा वे अपनी जीविका का अर्जन कर लेते थे। चारणों का प्रभाव राजन्य वर्ग में बढ़ जाने से इनको दिये जाने वाले दानों में कमी आयी। पारम्परिक उच्च शिक्षा अब भी उनके लिए सुलभ थी।

वणिक-वर्ग हिसाब-किताब में दक्ष था। यह शिक्षा उन्हें अपने घरों में ही मिल जाती थी। चारणों और भाटों को भी काव्य-कला की शिक्षा घरों में ही काव्य कला में दक्ष किसी परिजन से मिल जाती थी। पुस्तक-लेखन का काम ब्राह्मण भोजक, मथेण, सेवक आदि जातियाँ करती थीं। धार्मिक सम्प्रदायों में ग्रन्थ रचना का कार्य प्रचुर मात्रा में होता था। जैन मुनि और आचार्य भी सम्प्रदाय में मान्य ग्रन्थों को स्वयं लिपिबद्ध कर लेते थे। संस्कृत एवं प्राकृत भाषाओं और साहित्य के अध्ययन के लिए व्याकरण और काव्य-शास्त्र का पठन-पाठन तथा ग्रन्थों पर टीका-लेखन का प्रचलन था।

चित्रकार शृंगारमूलक आख्यान-काव्यों तथा धार्मिक आख्यानों पर आधारित दृश्यों द्वारा राजभवनों, देवालयों या श्रेष्ठिवर्ग के भवनों को चित्रित और अलंकृत करते तथा शिल्पी देव-भवनों और देव-मूर्तियों के निर्माण में व्यस्त रहते थे। स्वर्णाभूषणों के निर्माण, वस्त्रों की रंगाई-छपाई-बँधाई का काम भी शिल्पी करते थे। सिकलीगर और लोहार, अस्त्र-शस्त्रों तथा कृषि-उपकरणों का निर्माण करते थे। बनजारे और सौदागर अनेक वस्तुओं के व्यापार द्वारा प्रभूत लाभ अर्जित करते थे। नट, स्वांग, भांड, भवाई आदि कलावन्त जातियाँ कला-प्रदर्शन द्वारा लोगों का मनोविनोद कर अपना जीवन-यापन करती थी।

श्रमिकों की स्थिति शोचनीय थी। भारवाहक, खनक तथा लकड़हारे खेत-खदान-जंगल और हाटों में काम कर जीवन-यापन करते थे। ऋणग्रस्त श्रमिक परिवार क्रीतदासों के रूप में अमीरों के यहाँ बन्धक का जीवन जीते थे। कृषक और कर्मकर अपने श्रम का समुचित फल प्राप्त नहीं कर पाते थे। निरन्तर पड़ने वाले अकालों और सैनिक-अभियानों से फसलों के नष्ट हो जाने के कारण कृषक वर्ग की आय सदा डावाँडोल ही रहती थी। सिंचाई के अभाव में वर्षा ही कृषकों की जीवनाधार थी। असुरक्षा की अवस्था में किसान अपनी ज़मीनें छोड़कर अन्यत्र चले जाते थे। राजा और सामन्त अपनी आर्थिक समृद्धि के लिए किसानों और व्यापारियों को आमन्त्रित कर अपने यहाँ बसाते थे।

गाँवों और कस्बों में लोग जातिगत समुदायों में निवास करते थे। कभी-कभी एक ही प्रमुख जाति की बहुलता वाले अनेक गाँव होते थे। दूसरी जाति के लोग इन्हीं के आश्रित होते थे। लोगों की समस्याओं का समाधान उनकी जातिगत पंचायतों में होता था।

कुछ उद्दंड राजपूत स्वतन्त्र रूप से यत्र-तत्र दौरे करते हुए डाका डालने या

लूटपाट मचाने में व्यस्त रहते थे। सम्पन्न लोग यात्राओं में अपने रक्षकों को साथ रखते थे। तीर्थ यात्री अपनी रक्षा की पूरी तैयारी करके ही सामूहिक रूप में संघ बनाकर यात्रा करते थे। जैन तीर्थों के यात्रा, संघों का व्यय प्रायः कोई एक ही श्रेष्ठि वहन करता था। पुरोहित वर्ग तथा याचक जातियों को राज्य करों में छूट दी जाने के कारण व्यापारी वर्ग कभी-कभी अपने सामान की सुरक्षा का ज़िम्मा उनको सौंप कर ज़ोख़िम और राजकीय कर दोनों से मुक्ति पा लेते थे। प्रायः चारण लोग ऐसा कार्य करते थे। एक राज्य से दूसरे राज्यों में यात्रा करने पर आम लोगों पर कोई पाबंदी नहीं थी। पर उन्हें राज्यों के चुंगी नाकों पर कर अवश्य चुकाने पड़ते थे। भ्रमणशील बनजारों और राह चलती क़तारों से निर्धारित मात्रा में कर लिया जाता था। घोड़ों के व्यापारी भी कर देते थे।

राजपूत वर्ग अनेक कुरीतियों से ग्रस्त था। दहेज के डर से कन्या का जन्मते ही वध और जबरन सती प्रथा दो प्रमुख निंदनीय बातें थीं। परम्परा से अफ़ीम के शौक़ीन राजपूतों में मुस्लिम सभ्यता के प्रभाव से मदिरा का प्रचलन भी अधिक हो चला था।

बढ़ती हुई बहुपत्नी प्रथा के कारण परिवारों का आन्तरिक कलह बढ़ गया। बाल-विवाह और वृद्ध-विवाह भी घुन की भाँति व्याप्त होकर समाज को निर्जीव करते जा रहे थे।

राजपूतों के अनुकरण पर अन्य वर्ग भी रखेलें रखने लगे थे। ऐसी अवैध सन्तानों से गोला, दरोगा, पांचड़ा, या दस्सा संज्ञक अनेक जातिगत नवोत्पन्न उपवर्ग बन गये, जिन्हें समाज में हेय दृष्टि से देखा जाता था। गोला या दरोगा कहे जानेवाले ये लोग पीढ़ियों तक दहेज के रूप में दिये जाते रहे और कभी-कभी सती होनेवाली राजपूत रमणियों के साथ चिता में जलाये भी जाते रहे।

मुग़ल हरमों के अनुकरण पर अन्तःपुरों में नाजरों के रूप में नियुक्ति हेतु बालकों को नपुंसक बनाने का व्यवसाय चल पड़ा था। समूची क्षत्रिय जाति एक झूठे दंभ और वरीयता के अहंकार में जी रही थी। पारस्परिक ईर्ष्या-द्वेष, मान-सम्मान, ऊंच-नीच, कुलगत वैमनस्य और प्रतिशोध के गुणावगुण उनकी संगठित शक्ति में बाधक बने हुए थे। भूमि पर अधिकार की लालसा से बंधे होकर वे अपनी बहन-बेटियों को विधवा बनाने लगे थे। पिता पुत्र, भाई-बन्धुओं की हत्या करने और कुटिल नीति में निम्न स्तर पर भी उतर आने में वे हिचकिचाते नहीं थे। मुग़लों का संरक्षण पाकर अनेक राज-परिवारों ने अपने प्रतिशोध की ज्वाला को शान्त करने के प्रयास किये थे।

अनियंत्रित भोग विलास के कामों में साधन जुटाने के लिए जन साधारण पर भाँति-भाँति के कर आरोपित किए गए। छोटे-छोटे जागीरदारों ने भी राजाओं का अनुसरण किया, जिससे गाँवों और नगरों की आर्थिक स्थिति चरमरा गयी।

छुटभैये गाँवों को लूटने लगे।

शिक्षा की सुविधा तथाकथित उच्च और कुलीन वर्ग और मध्य-वित्त के लोगों तक ही सीमित थी। निम्न वर्ग तथा स्त्री वर्ग प्रायः इससे वंचित ही था। साहित्य तथा कला आदि उच्च कुलीन लोगों की बपौती थी। संगीत और नृत्य को प्रायः पेशेवर वेश्याएँ ही अपनाती थीं। राजघरानों में वेश्याओं का मान था। वेश्याएँ धार्मिक गोष्ठियों और उत्सवों में भी भाग लेती थी। धार्मिक सम्प्रदायों ने संगीत की रक्षा की।

समाज में स्त्रियों को कोई महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त नहीं था। उनमें पर्दा-प्रथा प्रचलित थी। घरों का सारा काम वे देखती थीं। निम्न वर्ग में वे खेती और पशु-पालन का काम भी करती थी। उनका जीवन एक तरह से सर्वथा पराधीन था। वे पुरुषों के लिए मात्र भोग की वस्तु थीं। समाज धार्मिक अंधविश्वासों और परम्परागत रूढ़ियों से ग्रस्त था। चिकित्सा, शिक्षा, संचार और आवागमन के साधन उन्नत अवस्था में नहीं थे।

बलात् धर्मपरिवर्तन का बोलबाला था। इस प्रकार बने मुसलमान निरंतर आगे बढ़ रहे थे। इस युग में शाक्त और शैव संप्रदाय अधःपतन को प्राप्त हो रहे थे। वैष्णव सम्प्रदाय की राम भक्ति और कृष्ण भक्ति शाखाएँ अभ्युदय को प्राप्त कर रही थीं। रामानंद और निम्बार्क के शिष्य सगुणोपासना का नवसंदेश लेकर राजस्थान में प्रवेश कर चुके थे। इनका प्रभाव राजपूत रनिवासों पर बढ़ता जा रहा था। पुष्टिमार्गीय कृष्ण भक्ति की जनसामान्य में एक प्रबल लहर संचरित होती जा रही थी। रानियाँ और ठकुरानियाँ राधाकृष्ण के मंदिरों का निर्माण कराने लगीं। महिला समाज में मीरा के भजनों, नरणीजी के मायरे, पदम-भगत के विवाह जैसी रचनाओं में श्रद्धा और अभिरुचि का उदय होने लगा था।

उत्तरी राजस्थान में विष्णोई और जसनाथी संप्रदायों का वर्चस्व ग्रामीण समाज में बढ़ चला था। इसका प्रमुख कारण था इनके नियमों की व्यावहारिकता और जीवन में उनकी उपादेयता। इन संप्रदायों ने जनसामान्य के चारित्रिक और भौतिक उत्थान में योग दिया। परम्परागत कथानकों के माध्यम से इन्होंने अपनी नवीन मान्यताओं से जन मानस को उद्वेलित कर एक नई क्रान्ति को जन्म दिया। तत्कालीन साहित्य में यह स्पष्ट दिखायी देता है। ढूंढाड़ में आमेर और नराणा को केन्द्र बनाकर नवोत्पन्न दादू पंथ ने अपने उपदेशों से जनसाधारण को व्यापक रूप से प्रभावित किया। और भी अनेक छोटे-मोटे धार्मिक संप्रदायों का प्रदेश में उद्भव हुआ, पर वे कृष्णभक्ति के प्रबल प्रवाह में विलीन हो गये।

कोई भी साहित्यकर्मी सामान्यतः समकालीन परिस्थितियों से अप्रभावित रह नहीं सकता। उसके परितः व्याप्त वातावरण का ज्ञान उसके साहित्य की सम्यक् समीक्षा में सहायक सिद्ध हो सकता है। कुशल-लाभ भी तद्युगीन

सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक या आर्थिक परिस्थितियों से असम्पृक्त नहीं रह सका। उसके द्वारा विरचित साहित्यिक कृतियों में इन परिस्थितियों का प्रभाव स्पष्ट परिलक्षित होता है।

राजस्थान और उसके चारों और फलती फूलती संस्कृति, ह्रासोन्मुख सामाजिक व्यवस्था, शिल्प-स्थापत्य, संगीत, नाट्य और चित्रकर्म विषयक ललित कलाओं के संकेत, रहन-सहन, खानपान, रीतिरिवाज, पर्वत्यौहार, लोकविश्वास, वस्त्राभूषण, प्रसाधन-सामग्री, मनोविनोद के साधन, आदि की झाँकी उसमें प्रदर्शित मिलती है। बालविवाह, पर्दा प्रथा, राजन्यवर्ग और सामान्तवर्ग द्वारा प्रजा का उत्पीड़न, दुर्बलों का दमन, परदाराओं के अपहरण द्वारा शौर्य के प्रदर्शन जैसे दुर्गुणों से ग्रस्त समाज का कुशललाभ ने यत्र-तत्र सम्यक् चित्रण किया है।

धर्म की वास्तविक परिभाषा से अनभिज्ञ धर्म-गुरुओं द्वारा कर्मकाण्डों के पाश में जन-सामान्य को फाँसे रखने के उपक्रम, जादू-टोना, तांत्रिक और मांत्रिक अभिचार, भूतप्रेत, यक्ष-व्यंतरों का आतंक, तथा ग्रह-गोचरों की उल्टी-सीधी गति से ग्रस्त मानवों के भाग्य का दिग्दर्शन आदि कुशललाभ की कृतियों के अभिन्न अंग हैं, जो सामान्यतः उसके समयुगीन अन्य कवियों की कृतियों में भी विद्यमान हो सकते हैं, पर कुशललाभ की रचनाओं में इन सबका उल्लेख विवेकपूर्वक किया गया मिलता है। इसका कारण यही हो सकता है कि वे राज्याश्रित साहित्यकार के साथ-साथ एक जैनधर्मावलम्बी आचार्य भी थे। और जैन सम्प्रदाय के मूल सिद्धान्त दान, शील, तप, संयम और अहिंसा आदि के प्रबल पोषक मनीषी।

पुनर्जन्म के प्रति हिन्दू समाज की पूर्ण आस्था, संसार की असारता, पाप-पुण्य से संबंधित कर्मों की यथानुकूल फल-प्राप्ति, जीवन के अंतिम चरण में दीक्षित होकर राजा और प्रजा का वैराग्य धारण करना, देवी-देवताओं की पूजा-अर्चा, व्रत उपवास, तीर्थयात्रा जैसे पारम्परिक विश्वासों को भी कुशललाभ ने अपनी रचनाओं में महत्त्वपूर्ण स्थान दिया है।

राजन्यवर्ग और लक्ष्मी-पुत्रों के आडम्बरपूर्ण जीवन और विकासमान नागरिक संस्कृति के आश्चर्यजनक अजनबीपन का नज़ारा, राज्य की न्याय व्यवस्था, आमात्यों और पुरोहितों के वर्चस्व, शासन की गुप्तचर व्यवस्था में वारवनिताओं की भूमिका, सुन्दरियों के वरण हेतु संघर्ष, लोभग्रस्त राजाओं और सामन्तों के द्वारा प्रजा पर अत्याचार के इतिवृत्त भी कुशललाभ ने स्वरचित साहित्य में बड़ी कुशलता के साथ संजोये हैं।

कुशललाभ के समकालीन प्रायः सभी सुयोग्य साहित्यकार, कवि या लेखक को किसी न किसी धनीमानी सेठ साहूकार, शासक, सामन्त या सम्राट का आश्रय प्राप्त था। उनमें से अधिकांश ने जनसाधारण के जीवन से बहुत दूर अपने आपको स्थापित कर लिया था। अपने आश्रयदाता के काल्पनिक गुणों का बखान और

चाटुकारिता उनके जीवन के प्रमुख अंग बन चुके थे। उस युग में साधु प्रकृति के ऐसे साहित्यकार भी विद्यमान थे, जिन्होंने सात्त्विक जीवन-यापन के साथ-साथ लोक के आध्यात्मिक और नैतिक उत्थान हेतु अपना जीवन समर्पित कर रखा था। कुशललाभ इसी कोटि के साहित्यकार थे। वे एक विशाल राज्य के शासक के साहित्यिक और नैतिक आचार्य थे। राजकीय जीवन का उन्होंने अत्यन्त समीप से अध्ययन किया था। गाँव-गाँव घूमकर, जनसामान्य के संपर्क द्वारा उन्होंने लोक-जीवन का भी सम्यक्रूपेण ज्ञान प्राप्त किया।

समकालीन लोक-जीवन के प्रति प्रगाढ़ संबंध के साथ-साथ पारम्परिक लोक साहित्य के अध्ययन के प्रति उनके लगाव, कविकर्म में उनकी अभिरुचि, छन्दः शास्त्र में पटुता प्रकृति के प्रति प्रेम तथा भक्ति और भावुकता से परिपूर्ण उनके मानस ने अपने तः व्याप्त वातावरण और परिस्थितियों को अपनी रचनाओं में सम्यक् रूप से चित्रित कर पाने में बहुत अधिक योग दिया है। संलग्न अध्यायों में इस विषयक विस्तृत जानकारी प्रस्तुत की गयी है।

2
जीवनवृत्त और काव्य-सृष्टि

कुशललाभ के जन्म और जीवन-वृत्त के विषय में कोई विशेष ज्ञातव्य तथ्य उपलब्ध नहीं है। कुशललाभ द्वारा विरचित साहित्य के आधार पर मात्र इतना ही कहा जा सकता है कि कुशललाभ ने संभवतः ई० सन 1543 (सं० 1600) में साहित्य-कर्म प्रारम्भ किया था, और उनका यह क्रम लगभग ई० सन 1581 (सं० 1648) तक अबाध गति से चलता रहा। सन् 1543 ई० (सं० 1600) में उन्होंने 'हंसदूत' काव्य की प्रतिलिपि अलवर नगर में अपने स्वयं के पढ़ने के लिए तैयार की थी। उस समय वे पंडित पदवी से विभूषित और मुनि पद पर प्रतिष्ठित थे। जैसा कि उक्त ग्रन्थ की निम्नांकित पुष्पिका से स्पष्ट है :—

"संवत 1600 वर्षे माघ वदि पंचम्यां दिने भौमवासरे हस्त नक्षत्रे श्री अलवर नगरे श्री खरतर गच्छे श्री जिनभाणिक्य सूरि विजयराज्ये श्री अभयधर्मोपाध्यायानां शिष्य पं० कुशललाभ मुनिना स्ववाचनार्थं विलिखे।"

इस पुष्पिका से स्पष्टतः अनुमान लगाया जा सकता है कि पंडित उपाधिधारी मुनि कुशललाभ की आयु सं० 1600 में 20 से 25 वर्ष के मध्य अवश्य रही होगी। कुशललाभ का जन्म ऐसी स्थिति में सं० 1575 से 1580 के मध्य कहीं स्थिर कर सकते हैं। यदि तेजसार रास' के विवादास्पद तथाकथित रचयिता जय-मंदिर, जिसके द्वारा उक्त ग्रंथ की रचना सं० 1592 में किए जाने का उल्लेख मिलता है, और कुशललाभ में अभिन्नता स्थापित की जा सके तो कुशललाभ के जन्म को और भी 7-8 वर्ष पीछे तक लाया जा सकता है। कुशललाभ की एक अन्य रचना 'पिंगल शिरोमणि' की पुष्पिका में सं० 1575 में उनकी रचना के उल्लेख ने श्री अगरचन्द नाहटा को कुशललाभ की जन्मतिथि को और भी पहले सं० 1550 की ऊहापोह में ला खड़ा किया था, पर यह संभावना रचनाविषयक वास्तविक तिथि के उद्घाटन से स्वतः समाप्त हो जानी चाहिए। 'पिंगल शिरोमणि' ग्रंथ के परिचय में यह तथ्य विस्तार से द्रष्टव्य है।

कवि के द्वारा विरचित अन्तिम रचना 'गुणसुन्दरी चौपई' का रचनाकाल संवत् 1648 में मिलता है, अतः इसके आधार पर 1650 वि० या उसी के आस-पास उनके शिवपद प्राप्ति की कल्पना की गयी है; जो उचित ही है।

कुशललाभ के जन्म के कुल, जन्म स्थान, माता पिता आदि से संबंधित कोई जानकारी किसी भी स्रोत से उपलब्ध नहीं है, पर उनके द्वारा प्रणीत ग्रंथ 'तेजसार रास,' 'अगड़दत्त रास', 'भीमसेन हंसराज चौपई', 'जिनपालित जिनरक्षित गाथा' तथा 'पार्श्वनाथ दशभव स्तवन', में भी 'हंसदूत' काव्य की भाँति उन्होंने अपने गुरु का नाम, अभय धर्म दिया है और उन्हें खरतरगच्छीय जिनभद्रसूरि संतानीय तथा उपाध्याय पद पर विभूषित बताया है, यथा:—

1. श्री खरतर गच्छि सहगुरु राय, गुरु श्री अभयधर्म उवझाय ।।
(**तेजसार रास**, चउपई—408)

2. पास नइ स्वामी सुपसाय, गुरु श्री अभयधर्म उवझाय ।
तासु सीस हरखइ घणिय, वाचक कुशललाभ इम भणिय ।।
(**जिनरक्षित जिनपालित**, संधि छं० सं० 91)

3. उवझाय श्री अभयधर्म सीसह, स्तव्यु प्रभु सेवाभणी ।
श्री कुशललाभ सुमति बोल वोलइ सदा सउ संपति घलि ।।
(**गौडी पार्श्वनाथ**, स्तवन—61)

अभयधर्म की गुरु-परम्परा पर प्रकाश सं० 1575 वि० में लिखित '**विपाक सूत्र**' नामक धार्मिक रचना से पड़ता है । इसके अनुसार यह परम्परा निम्न प्रकार बनती है—

जिनभद्रसूरि—महोपाध्याय सिद्धान्त रूचि—वाचक विजय सोम गणि—नागकुमार गणि (राजवाचनाचार्य) (1) अभयधर्म (2) जयधर्म ।

अभयधर्म और जयधर्म ने सं० 1575 में संखवाल गोत्रीय शाह भाखर की पुत्री श्रीमती अरधू (श्राविका) के द्वारा विहराते समय उक्त विपाक सूत्र की एक प्रति लिखकर पढ़ी थी । सं० 1611 में वाचक हेमसार गणि ने इस ग्रन्थ को स्ववाचनार्थ प्राप्त किया और सं० 1615 में इस पुष्पिका लेख में आंशिक विस्तार करते हुए अभयधर्म का अपर नाम अभयदेवाचार्य भी लिखा है । सं० 1575 में अभयधर्म और जयधर्म ने कुशललाभ का कोई नामोल्लेख नहीं किया है, अतः स्पष्ट है कि उस समय तक कुशललाभ ने इनका शिष्यत्व ग्रहण नहीं किया था । उनका जन्म भी उस समय तक नहीं हुआ होगा ।

कुशललाभ की प्रारंभिक शिक्षा कहाँ सम्पन्न हुई होगी, यह अनुमान लगाना कठिन है, पर यह अनुमान तो सहज ही लगाया जा सकता है कि कुशललाभ की धार्मिक और साहित्यिक शिक्षा उनके गुरु के सान्निध्य में ही हुई होगी । अपनी अन्तिम अवस्था तक कुशललाभ वाचक पदवी से ही विभूषित रहे, उससे ऊपर उठकर उपाध्याय या महोपाध्याय के पद को प्राप्त नहीं कर सके । कुशललाभ के गुरु अभयधर्म और काकागुरु जयधर्म द्वारा प्रतिलिपित 'विपाक सूत्र' की प्रति में उनके गुरु नाग कुमार गणि को राजवाचनाचार्य की उपाधि से विभूषित कहा गया

है। यह पद मात्र सम्मानजनक उपाधि थी, जो राज्य द्वारा मान्यता का प्रतीक हो सकती है।

वे एक योग्य गुरु के योग्य शिष्य, उत्कृष्ट कोटि के विद्वान और स्वयं भी एक सुयोग्य गुरु थे। 'माधवानल कामकंदला चौपई', 'ढोलामारवणी री चौपई' और 'पिंगल शिरोमणि' में स्पष्टतः वह स्वयं को जैसलमेर के राजकुमार और कालान्तर में रावल उपाधि धारी, हरराज के गुरु के रूप में व्यक्त करते हैं। इससे भी यह प्रमाणित होता है कि वे भी राज्य द्वारा सम्मानप्राप्त यति थे। उक्त ग्रंथों की रचना इन्होंने राज्याश्रय में ही रह कर की थी।

ऐसा प्रतीत होता है कि आत्मकल्याण और धर्म प्रचार की भावना से प्रेरित होकर, उन्होंने स्वगुरु के आदेशानुसार, अथवा जैन तीर्थों की पवित्रता से आकर्षित होकर 'जिनपालित जिनरक्षित रास, 'पार्श्वनाथ दशभवस्तवन,' 'अगड़दत्त रास,' 'भीमसेन हंसराज चौपई,' 'स्थूलिभद्र छत्तीसी,' 'नवकार छन्द,' आदि की रचना धर्म प्रचार हेतु गुजरात आदि में प्रवास काल में की थी। इनका उद्देश्य सदाचार संप्रेरित जीवन-यापन पर बल देना रहा है। 'महामाई दुर्गासातसी' और 'जगदम्बा छन्द' की रचना का उद्देश्य, देश में बढ़ते मुस्लिम प्रभाव के विरुद्ध शक्तिपूजक राजपूत जाति के आह्वान के अतिरिक्त और कुछ नहीं दिखाई देता, जिसके लिए साधु-संत सदा से प्रयत्नशील रहे हैं।

धार्मिक ग्रन्थों के पठन-पाठन की परम्परा के साथ-साथ उन्होंने छन्दशास्त्र, कामशास्त्र, संगीतशास्त्र, और लोकसाहित्य का भी अध्ययन किया था। उनके द्वारा प्रणीत साहित्य में इन विषयों के गहन-अध्ययन के पुष्कल प्रमाण उपलब्ध है। जैन साधुओं की चर्या के अनुसार कुशललाभ ने राजस्थान, मालवा, गुजरात, आदि के अनेक स्थानों की यात्राएँ की होंगी, पर जैसलमेर से उनका लगाव बहुत अधिक रहा। कुशललाभ के साहित्य के अध्ययन से उनके बहुमुखी अनुभव और ज्ञान की जानकारी मिलती है। 'शत्रुंजय यात्रा स्तवन' से उनके भौगोलिक ज्ञान का परिचय मिलता है तो साथ ही इस बात की जानकारी भी मिलती है कि उनको सामन्ती शिष्टाचार, और प्रादेशिक इतिहास की भी जानकारी थी। 'माधवानल कामकंदला चौपई,' 'ढोला मारू चौपई,' 'अगड़दत्त रास,' 'भीमसेन हंसराज चौपई,' आदि रचनाएँ इस प्रकार की जानकारी से भरी पड़ी हैं। उन्हें शकुन शास्त्र, तथा विभिन्न पर्वोत्सवों में भी विशेष रुचि थी। संगीत में उनकी दक्षता का प्रमाण उनके द्वारा विरचित स्तोत्र, छंद और गीत शीर्षक लघु रचनाओं तथा 'भीमसेन हंसराज चौपई' में प्रयुक्त शास्त्रीय रागों में निबद्ध ढालों से मिलता है—

कुशललाभ ने जिन कथाओं और विषयों को आधार बनाकर अपने साहित्य की रचना की है, उन्हीं कथाओं और विषयों को आधार बनाकर सुदीर्घकाल से धर्मोपदेशक और कवि अपने साहित्य की संरचना करते रहे थे। कुशललाभ ने इन

सबका पूरा लाभ अपनी कृतियों की संरचना में लिया है। यह उनके सुदीर्घकालीन स्वाध्याय की प्रवृत्ति का ज्वलंत प्रमाण है। पिंगल शास्त्र जैसे दुरुह विषय के ज्ञान के लिए भी उन्हें कितनी साधना करनी पड़ी होगी, यह उनकी रचना 'पिंगल शिरोमणि' से पता चलता है। इस रचना में उन्होंने अपने से पूर्व के, संस्कृत-प्राकृतादि छंद शास्त्रीय ग्रन्थों के प्रणेता, अनेक विद्वानों की नामावली प्रस्तुत की है जिनका सम्यक् एवं सूक्ष्म अध्ययन उन्होंने किया था।

कुशललाभ द्वारा सृजित और संपादित अब तक अठारह रचनाएँ प्रकाश में आई हैं, जिनका रचनाकाल सं० 1616 से सं० 1648 तक 32 वर्षों की अवधि में विभाजित है। श्री पुण्यविजय जी के उपासरे में कुशललाभ की एक और रचना 'ज्ञान दीप' की प्राप्ति का उल्लेख श्री अगरचंद नाहटा ने मणिधारी श्री जिनचन्द्र सूरि अष्टम-शताब्दी स्मृति ग्रन्थ (द्वितीय खंड) में प्रकाशित अपने लेख में किया था। उक्त उपलब्ध रचनाएँ निम्नांकित हैं?—

1. माधवानल कामकंदला चौपई (सं० 1616 वि०)
2. ढोलामारू चौपई (सं० 1617)
3. जिनपालित जिनरक्षित रास (सं० 1621)
4. तेज सार रास (सं० 1624)
5. अगड़दत्त रास (सं० 1625)
6. पिंगल शिरोमणि (सं० 1635)
7. स्तंभन पार्श्वनाथ स्तवन (सं० 1638)
8. भीमसेन राजहंस चौपई (सं० 1643)
9. शत्रुंजय तीर्थयात्रा स्तवन (सं० 1644)
10. गुण-सुन्दरी चौपई (सं० 1648)
11. नवकार छन्द
12. गौडी पार्श्वनाथ स्तवन
13. श्री पूज्य-वाहण गीत
14. पार्श्वनाथ दशभव स्तवन
15. महाभाई दुर्गा सातसी
16. भवानी छंद अथवा जगदम्बा छंद
17. स्थूलिभद्र-छत्तीसी
18. कवित्त सवैया।

3
काव्य रूप और नामकरण

कुशललाभ की रचनाओं का काव्य-स्वरूप और विषय की दृष्टि से वर्गीकरण किया जा सकता है। काव्य-स्वरूप की दृष्टि से कथा-काव्य, खंड-काव्य और स्फुट काव्य में तथा विषय की दृष्टि से आख्यानक, जैन-भक्तिमूलक, पौराणिक, और काव्य शास्त्र विषयक विभागों में विभाजित किया जा सकता है। आख्यानक काव्यों को पुनः लौकिक, पौराणिक और धार्मिक आख्यानों में बाँटा जा सकता है। लोकाख्यान ग्रन्थों में 'माधवानल काम कंदला चौपई, और 'ढोला मारवणी चौपई' तथा पौराणिक आख्यानकों में 'दुर्गा सातसी' को परिगणित किया जा सकता है। शेष सभी आख्यान जैन सम्प्रदाय से संबंधित धर्माख्यान हैं।

'पिंगल शिरोमणि' में दृष्टान्त रूप से प्रस्तुत राम कथा के प्रसंगों को मूल ग्रन्थ से अलग कर स्वतन्त्र रचना के समान किसी वर्ग विशेष में रखना उचित नहीं है। 'पिंगल शिरोमणि' में छन्द शास्त्र के सैद्धान्तिक विवेचन के साथ अलंकार और अभिधान माला आदि को भी स्थान दिया गया है।

'दुर्गा सातसी' मार्कण्डेय पुराणान्तर्गत 'दुर्गा सप्तशती' की कथा के आधार पर सामान्य अन्तर के साथ विरचित कथा-काव्य है। कवित्त, सवैया और भवानी छन्द जैसी रचनाओं को स्फुट रचनाओं में परिगणित किया जाना चाहिए। शेष सभी जैन-धर्म-विषयक स्तुतियाँ और स्फुट रचनाएँ हैं।

नामकरण के आधार पर कुशललाभ की कृतियों को निम्नांकित वर्गों में विभाजित किया जा सकता है—

छन्दगत

राजस्थानी साहित्य में छन्द विशेष के नाम पर भी रचना के नामकरण की पद्धति रही है। दूहा, चौपई, वेलि, नीसाणी, वचनिका, झूलणा, सोरठा आदि कुछ ऐसे ही छन्द हैं, जिनके आधार पर विरचित अनेक रचनाएँ मिलती हैं 'ढोला मारू रा दूहा,' 'ढाढी बादर री नीसाणी,' 'मानसिंह का झूलणा' और 'जेठवे रा सोरठा' संज्ञक रचनाएं इसी कोटि की रचनाएँ हैं।

पिंगल छन्दों के नाम पर रचना का नामकरण करने की परिपाटी विक्रम की

तेरहवीं शताब्दी में प्रारम्भ हुई मानी जाती है। उस काल में विरचित 'सुभद्रा सती चौपई' का स्थान इस प्रकार की रचनाओं में सर्वप्रथम रखा जा सकता है। तदुपरान्त इस प्रकार की रचनाओं का प्राचुर्य होता गया। चौदहवीं शताब्दी में 'पद्मावती चौपई' और 'गुणवती चौपई' की रचना हुई; पन्द्रहवीं शताब्दी में 'ज्ञान-पंचमी चौपई', 'काकावधि चौपई', गौतम-पृच्छा चौपई', 'चिहुंगति चौपई' और 'मंगल कलश चौपई' का प्रणयन हुआ।

कुशललाभ ने चौपई संज्ञक कृतियों की रचना इसी परम्परा में की है। इससे इस विद्या की तत्कालीन लोकप्रियता का पता चलता है, जो जैन लेखकों को विशेष प्रिय थी।

जिस समय जैन लेखक चौपई में रचना कर रहे थे, उसी समय पूर्वी हिन्दी में प्रेमाख्यानों का प्रणयन करने वाले मुसलमान कवियों ने भी चौपई को काव्य-प्रणयन का आधार बनाया। दाऊद की 'चन्दायन', कुतुबन की 'मृगावती', मंझन की 'मधुमालती', जायसी का 'पद्मावत' और कन्हावत' आदि अनेक रचनाएं इसी छन्द में रची गयीं।

'छन्द'—शब्दान्तक प्रशस्ति रचनाएँ

'छन्द' भी राजस्थानी काव्य की एक विधा है। इस शब्द का प्रयोग प्रायः स्तुति-परक स्फुट काव्यों के लिए ही होता है। ऐसा प्रतीत होता है कि वैदिक सूक्तों या मन्त्रों के लिए प्रयुक्त 'छान्दस्' की ही परम्परा में राजस्थानी काव्य में इस प्रकार की कविता का यह नाम रखा गया जो अब तक प्रचलित चला आ रहा है। इसके बाह्य परिवेश में अवश्य ही वैदिक छन्दस् से अन्तर हो सकता है, पर जहाँ तक इसमें निहित भावों का प्रश्न है, उनमें कोई अन्तर नहीं दिखाई देता।

मध्य-कालीन राजस्थानी साहित्य में ऐसी असंख्य लघु या लम्बी स्फुट कविताओं का उल्लेख मिलता है, जिन्हें छन्द नाम से अभिहित किया गया है और जो सांस्कृतिक, ऐतिहासिक, साहित्यिक अथवा दार्शनिक सभी दृष्टियों से महत्त्व-पूर्ण हैं।

देवी-देवताओं की स्तुति में विरचित छन्द मुख्यतः गणेश, महादेव, भैरव, क्षेत्रपाल, भवानी, चामुंडा, जगदम्बा आदि मातृकाओं, गोरखनाथ तथा सूर्य-शनिश्चरादि नवग्रहों से सम्बन्धित मिलते हैं। जैन कवियों ने छन्दों की रचना पार्श्वनाथ, ऋषभदेव, भरत बाहुबलि, दादा जिन कुशल सूरि जैसे तीर्थंकरों या धर्मप्रचारकों की स्तुति में रचे हैं। सर्वानन्द (14वीं शताब्दी), मेरूनन्दन (15वीं शताब्दी), हीराणन्द (15वीं-16वीं शताब्दी), सहज सुन्दर (1562 वि०), लावण्य समय (1585 वि०) जैसे कुशललाभ से पूर्ववर्ती कवियों ने और इसी प्रकार केशव, हेमरतन, समय-सुन्दर, हेम, चेतन, समयसार, काह्न प्रभृति परवर्ती

अनेक कवियों ने छन्दों की रचना की है।

जैनेतर लोक देवताओं की स्तुति में भी अनेक कवियों ने छन्द रचे हैं। जालू कवि कृत राव देवजी रो छन्द, बीदर, खेम सायर, और अचला विरचित पश्चिमाधीस छन्द', मेहा रचित पाबूजी रा छंद, और 'गोगाजी रा छन्द' इसी कोटि की रचनाएँ हैं। शौर्यपूर्ण कार्यों की प्रशंसा में विरचित छंदों में वीठू सूजा (1534-1541 ई०) कृत 'राव जयतसी रो पाधडी छंद', श्रीधर रचित 'रणमल्ल छन्द' (1455 वि०), वोदड़ मोड कृत 'महाराउ रायघण जी रो छंद' प्रसिद्ध है। प्राचीनतम छन्द जो अब तक प्रकाश में आया है—वह है सर्वाणंद कृत 'वस्तुपाल तेजपाल छंद' (14वीं शती), जो आबू पर्वत पर देलवाड़ा के प्रसिद्ध जैन मंदिर का निर्माण करने वाले गुजरात के प्रधान मंत्री वस्तुपाल और तेजपाल की प्रशंसा में रचा गया था।

कुशललाभ ने इसी परम्परा में नवकार छंद, भवानी छंद या जगदंबा छंद, तथा गौडी पार्श्वनाथ छंद की रचना की है।

पद संख्यापरक

कुशललाभ ने काव्य में विरचित पदों की संख्या के आधार पर भी अपनी रचनाओं के नाम रखे हैं। 'स्थूलिभद्र छत्तीसी' और 'महामाई दुर्गा सातसी' ऐसी ही संख्यापरक रचनाएँ हैं। 'स्थूलिभद्र छत्तीसी' में गुरु स्थूलिभद्र की कीर्ति का गान किया गया है। छत्तीस छन्दात्मक काव्य होने के कारण इसके नाम के साथ 'छत्तीसी' शब्द का प्रयोग किया गया है। 'महामाई दुर्गा सातसी' भी छन्दपरक रचना ही है। 366 छंदों में रचित इस रचना में महिप-मर्दिनी मां दुर्गा की कीर्ति-गाथा गायी गयी है। इस रचना के साथ 'सातसी' शब्द का योग मात्र मूल की अनुकरण की प्रवृत्ति के कारण किया गया है। इसका नाम मूलतः 'दुर्गा सप्तशती' ही है।

स्तुति, स्तवनपरक रचनाएं

जैन कवियों ने भक्तिपरक रचनाओं को छंदों के समान ही स्तुति, थुई, स्तवन आदि नाम भी दिये हैं। सैकड़ों की संख्या में ऐसी रचनाएँ ग्रन्थागारों में उपलब्ध हैं। कुशललाभ ने इसी परम्परा में 'पार्श्वनाथ दशभव स्तवन', 'स्तंभन पार्श्वनाथ स्तवन' 'शत्रुंजय यात्रा स्तवन' की रचना की है। 'श्री पूज्यवाहण गीत' को भी हम इसी श्रेणी में रख सकते हैं।

रासमंज्ञक रचनाएँ

रास या रासक का उल्लेख संस्कृत और अपभ्रंश साहित्य में प्रचुरता से मिलता

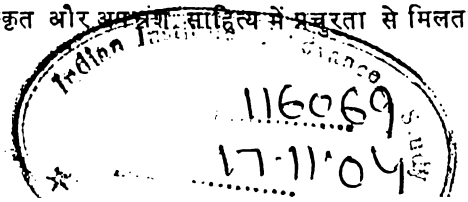

है। भरतमुनि ने नाट्य शास्त्र में इसे 'क्रीडनीयक' कहा है—"**क्रीडनीयक-मिच्छायो दृश्यं श्रव्यं च यद् भवेत्**" (प्रथम अध्याय)। भास ने इसके समानार्थक 'हल्लीसक' शब्द का उल्लेख किया है। हरिवंश पुराण, विष्णु पुराण, धनंजय के 'दशरूपक' तथा भोज के 'सरस्वती कण्ठाभरण' एवं 'श्रृंगार प्रकाश' में भी रास का उल्लेख आया है। इन सभी उल्लेखों में रास को क्रीड़ाप्रधान अथवा नृत्यात्मक ही बताया है। बाणभट्ट ने हर्ष चरित में जन्मोत्सव के अवसर पर आवर्त संज्ञक रास मंडलों का उल्लेख किया है—साथ ही अश्लील रासक पद गाये जाने की बात भी कही है।[1] श्री मद्भागवत् में रास नृत्य के साथ गेयता का वर्णन है (दशम स्कंध, अध्याय 33 2-3, 6, 11, 8, 10)। 'कर्पूर मंजरी' (4/10) में दंड रासु, तालरासु, लगुडरास आदि रास के विभिन्न प्रकारों की चर्चा की गयी है। वात्स्यायन के कामसूत्र, वाग्भट्ट कृत 'काव्यानुशासन' तथा हेमचन्द्रकृत काव्यानुशासन' में भी रास में गान तत्त्व की विद्यमानता के प्रमाण प्राप्त हैं।

हेमचन्द्र ने रासक को उपरूपक मानकर इसे श्रव्य और दृश्य दोनों ही भेदों से समन्वित कहा है। उन्होंने इन उपरूपकों में उद्धत; मृसण और मिश्र नामक तीन भेद बताए हैं। रासक एक उद्धतप्रधान गेय उपरूपक गिना गया है।[2] डॉ० दशरथ शर्मा के मतानुसार चर्चरी और रास नृत्यों के साथ देश्य भाषाओं की गीतियाँ भी गायी जाने लगीं जो धीरे-धीरे 'चर्चरी' और 'रास' नाम से प्रचलित हो चलीं। कालान्तर में यही गीतियाँ जैन धर्मावलम्बियों के उपदेशात्मक धार्मिक गीतों की वाहन बनीं, जिनमें गेय रस कम होता गया और श्रव्य काव्य रह गया। नृत्य से इसका संबंध विच्छिन्न हो गया।[3]

विरहांक और स्वयंभू ने रासक और रासावंध की व्याख्या की है। विरहांक ने 'वृत्त जाति समुच्चय' में रासक में विस्तरितक और द्विपदी छन्दों का प्रयोग और विदारी से समापन बताते हुए आगे रासक को अडिल्लों, दुवहों, मात्राओं, रड्डाओं और ढोसाओं से निर्मित कहा है। स्वयंभू ने 'स्वयंभूछंदस्' में रासावंध को धत्ताओं, पद्धडियों छद्धडियों, तथा अन्य सुन्दर छन्दों से बना बताया है। उन्होंने रासा नामक एक पृथक छन्द की परिभाषा भी दी है। संभवतः रास में गान तत्व की निरन्तर वृद्धि होते रहने से विशिष्ट गान को ही रासा छन्द कहा गया है।[4]

परवर्ती साहित्य में इसी रासा छन्द के प्रयोग की प्रमुखता के कारण रचनाओं का नामकरण भी उसी पर होने लगा, जिसका प्रचलन परवर्ती साहित्य में प्रचुरता से मिलता है। कालान्तर में रास, रासक या रासो संज्ञक रचनाओं के विषय का

1. हर्ष चरित एक सांस्कृतिक अध्ययन, डा. वासुदेवशरण अग्रवाल, पृ० 33, 67
2. हिन्दी साहित्य का आदिकाल, डा. हजारीप्रसाद द्विवेदी, पृ० 60
3. रासों के अर्थ का क्रमिक विकास, साहित्य संदेश, जुलाई 1951 ई०
4. संदेश रासक—भूमिका, विश्वनाथ त्रिपाठी, पृ० 64-65

भी विकास होने लगा। प्रेम, धर्म, उपदेश, वीरता, चरित्र, गाथा आदि विषयक रास और रासो लिखे जाने लगे। शृंगार, प्रेम आदि कथाओं वाले लौकिक काव्यों को 'रास' की संज्ञा दी गयी और ऐतिहासिक और वीरता-परक रास रासो कहे जाने लगे। कविराज विश्वनाथ ने 'साहित्य दर्पण' में 'नाट्य रासक' और 'रासक' दो उपरूपक बताये हैं। 'नाट्य दर्पण' में रासक की तथा 'भाव प्रकाश' में नाट्य रासक की परिभाषाएँ मिलती हैं। रासक में सोलह या अठारह नायिकाओं द्वारा पिंडी-विन्यास में नाचने की बात कही गयी है।[1] डॉ० कीथ ने नाट्य रासक को समूह-नृत्य और ताल-नृत्य कहा है।[2]

धीरे-धीरे इन गेय रूपकों और नाट्य रासकों के क्रमिक विकास में कथा तत्त्व का समावेश होने लगा था। नृत्य के स्थान पर गान की प्रधानता के साथ-साथ कथा-तत्त्व की बहुलता होती चली गयी। जैन लेखकों ने इसका लाभ उठाकर लोक प्रचलित श्रृंगार परक कथाओं के स्थान पर उपदेश और वैराग्यमूलक कथाओं का रासों में गुम्फन किया। उनमें विविध प्रकार के छन्दों का प्रयोग भी होने लगा। बारहवीं शताब्दी के बाद ऐसे कथा प्रधान रासों की संख्या बढ़ती गयी।[3]

रास की आभ्यन्तरिक रचना का परीक्षण करने पर यह धारणा बनती है कि चर्चरी, दूहा, फागु, रास आदि नामों से प्राप्त रचनाओं में केवल छन्द की प्रधानता ही रहती है, अन्य किसी प्रकार का तात्त्विक अन्तर नहीं है। 'रास' रचना के प्रारम्भ में भी इष्टदेव की स्तुति और अन्त में सुनने या पढ़ने वालों के लिए मंगल कामना का उल्लेख रहता है। जैन या जैनेतर, प्रायः सभी रासों में ये लक्षण समान रूप से पाये जाते हैं।

राजस्थानी साहित्य में सर्वप्रथम रास नरपति नाल्ह रचित 'बीसलदेव रास' है, जिसकी रचना संवत् 1212 में की गयी थी। इसी क्रम में सालिभद्र सूरि ने सं० 1241 में 'भरतेश्वर बाहुबलि रास' और 'बुद्धि रास' की रचना की। बुद्धिरास की परम्परा में 'सार शिक्षा' तथा 'हित शिक्षा' जैसे बुद्धिपरक नैतिक शिक्षा विषयक रासों की रचना की गयी। सं० 1257 में आसिगु ने 'जीवदया रास' और 'चन्दन बाला रास' रचा। 'आबू रास' में आमात्य विमल और वस्तुपाल तेजपाल द्वारा आबू में जैन मन्दिरों के निर्माण का वर्णन है। सं० 1313 के आस-पास लक्ष्मी तिलक ने 'जिनेश्वरी सूरि विवाह वर्णन रास' की, अंबदेव सूरि ने 'समरारास' की और पूर्णिमागच्छीय शालिभद्र सूरि ने 'पांडव चरित रासु' की संरचना की। इसी परम्परा में कुशललाभ ने 'अगड़दत्त रास' और 'ज़िन

1. नाट्यदर्पण, बड़ौदा, पृ० 214-15
2. द संस्कृत ड्रामा, पृ० 351
3. संदेश रासक की भूमिका, डॉ. हजारीप्रसाद द्विवेदी एवं विश्वनाथ प्रसाद त्रिपाठी, पृ० 64

पालित जिनरक्षित रास', जिसे 'संधिगाथा' नाम भी दिया गया है, की रचना की।

नरपति नाल्ह ने 'वीसलदेव रास' को रसायण की संज्ञा भी अनेक स्थलों पर दी है। इस दृष्टि से रसायण रास का ही पर्याय निश्चित होता है। रसायण का अर्थ श्रृंगार प्रेमादि से रससिक्त प्रसंग से ही ग्रहण करना चाहिए। रास शब्द के मूल में भी यही भावना निहित है। जैन साहित्य में 'उपदेश रसायन रास' का भी उल्लेख मिलता है।[1] इसका अर्थ 'उपदेशामृत' किया जा सकता है। कुशललाभ के 'रास' संज्ञक काव्यों को भी इसी दृष्टि से रास काव्यों की प्राचीन परम्परा में उपदेश काव्य ही माना जाना चाहिए।

1. संदेश रासक—भूमिका, पृ० 66

4

काव्यों तथा कथानकों की परंपरा और उनका सार-संक्षेप

माधवानल कामकंदला

जैसा कि पूर्व में बताया गया है, कुशललाभ की ज्ञात रचनाओं में 'माधवानल कामकंदला' कालक्रम की दृष्टि से सर्वप्रथम रचना है। इस काव्य की प्रौढ़ता को देखते हुए यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि कुशललाभ ने इस रचना से पूर्व भी किसी रचना का प्रणयन अवश्य ही किया होगा। इस काव्य का आख्यान भारतीय आख्यानों में सुप्रसिद्ध रहा है। 'सिंहासन द्वात्रिंशिका', 'वेताल पंचविंशतिका', 'शुक-सप्ततिका', 'हितोपदेश', 'पंचतंत्र', 'कथा-सरित्सागर', 'वृहत्कथामंजरी', 'वसुदेव हिण्डी', 'जातक कथा अवदान', 'आख्यान यामिनी' आदि प्राचीन आख्यानक ग्रन्थ अधिकांश परवर्ती कथाओं के मूल स्रोत रहे हैं। वैदिक साहित्य में निहित प्रतीक कथाओं से प्रारम्भ कर प्रायः सभी भारतीय भाषाओं के साहित्य में कथाओं के लक्षण मिलते हैं।

जैनागमों में 'जयधम्म कहा', 'उवासग्गदशाओं', 'विपाक सूत्र', 'सूय गडांग' आदि समग्र रूप से कथात्मक संग्रह हैं। 'भगवती ठाणांग' और 'सूय गडांग' कथाओं की दृष्टि से उल्लेखनीय हैं। 'समराइच्च कहा', 'तरंगवती', पउमचरिउ,' 'भविसयत्त कहा', आदि जैन साहित्य के सुप्रसिद्ध कथा-ग्रन्थ हैं। जैन लेखकों ने धर्म प्रचार की दृष्टि से कथाओं का आश्रय लिया और कथाओं के वृहदाकार संकलन तैयार किये। ऐसे अनेक कथा कोष आज उपलब्ध हैं। उनमें कतिपय इस प्रकार हैं—

'हेमाचार्य कथा संग्रह', आनन्द सुन्दर का 'कथा कोष,' सर्वसुन्दर का 'कथा संग्रह', श्री विजयचन्द्र, देवभद्र, जिनेश्वर सूरि के 'कथा कोष,' हरिषेण का कथा-महोदधि', उत्तमर्षि का 'कथा-रत्नाकर', धर्मघोष का कथार्णव आदि-आदि। परवर्ती मध्य-युगीन जैन लेखकों ने प्रायः इन्हीं ग्रन्थों को आधार बनाकर अपनी कथाओं का वितान बुना है।

'माधवानल कामकन्दला' की कथा का मूल स्रोत 'सिंहासन द्वात्रिंशिका' की

इक्कीसवीं कथा है, जिसे अनुरोधवती पुत्तली ने सुनाया है। इस कथा के आधार पर संस्कृत, अपभ्रंश, हिन्दी, ब्रज, राजस्थानी, गुजराती, मराठी आदि अनेक भाषाओं में कवियों ने अपनी कल्पना के योग से कथा को अनेक नव्य स्वरूप प्रदान कर दिये हैं।

पश्चिमी भारत में यह कथा बहुत प्रसिद्ध रही है। सं० 1300 में आनन्दधर ने संस्कृत-अपभ्रंश में 'कामकंदलाख्यान' या 'माधवानलाख्यानम्' की रचना की। कनकसुन्दर ने भी माधवानल नाटक की रचना इसी आधार पर की। इनके उपरान्त इस कथा के आधार पर साहित्य-प्रणयन का जो क्रम चला, वह निम्न प्रकार है—

1. बालक कवि प्रणीत माधवानल काम-कंदला भाषा-बंध (सं० 1583-84 वि०)।
2. गणपति कृत माधवानल 'कामकंदला प्रबन्ध' या' 'कामकला दोग्धक', (अपभ्रंश मिश्रित मरू गुर्जर सं० 1584)
3. माधव शर्मा कृत, माधवानल काम कंदला रस विलास' (ब्रज भाषा-सं० 1600 वि०)
4. अज्ञात कृत 'माधवानल कामकंदला' (अपभ्रंश, ब्रज, डिंगल मिश्रित संस्कृत सं० 1600 वि० के लगभग)

कुशललाभ के उपरान्त भी इस कथा को माध्यम बनाकर ब्रज-भाषा, बुन्देल-खंडी, हिन्दी, उर्दू, फ़ारसी, संस्कृत एवं राजस्थानी आदि भाषाओं में काव्य या नाटक तक लिखे जाते रहे।

कुशललाभ ने 'माधवानल कामकंदला चौपई' की रचना अपने प्रिय शिष्य राजकुमार हरराज के मनोरंजनार्थ सं० 1616 में की थी। उसने भी गणपति कायस्थ के समान मूल कथा में तनिक परिवर्तन करते हुए उसमें माधव और कंदला के पूर्व-जन्म के प्रसंग की संयोजना की है। इसके रचनाकाल के विषय में विभिन्न प्रतियों में विभिन्न उल्लेख मिलते हैं। कतिपय शोधक सं० 1613 में इसकी रचना हुई मानते हैं। आनन्द काव्य महोदधि में प्रकाशित प्रति में और लेखक के संग्रह में उपलब्ध हस्तलिखित प्रति में रचना का काल फाल्गुन शुक्ला 13 दिया गया है। इस विषयक जो दोहा लेखक के संग्रह की प्रति में मिलता है, वह इस प्रकार है—

संवत सोल सतोतरइ जैसलमेर मझारि।
फागुण सुदि तेरसि दिवसि, विरची आदितवार॥ 550

(लेखक के निजी संग्रह में)

अधिकांश हस्तलिखित प्रतियों में रचना-तिथि सं० 1616 फाल्गुन सुदि 13 रविवार विषयक उल्लेख ही मिलते हैं। वर्ष, मास, तिथि और वार की दृष्टि से

इसका मेल भारतीय तिथिपत्रक (Indian Ephemeries) से बैठ जाता है—अतः निःसंकोच हम इसी तिथि को उक्त कृति का रचना संवत् स्वीकार कर सकते हैं।

कथासार

राजा इन्द्र की रूपगर्विता अप्सरा जयन्ति को इन्द्र-सभा में अभिनीत नाटक में अनुपस्थिति के कारण कुपित होकर इन्द्र ने शाप दे दिया। परिणामस्वरूप वह पृथ्वी लोक की पुष्पावती नगरी में शिलारूप में अवतरित हुई। उसका उद्धार अब इन्द्र के वचनानुसार माधव नामक ब्राह्मण कुमार के द्वारा पत्नी-रूप में वरण से ही हो सकता था।

एक बार कैलाश पर्वत पर समाधिस्थ भगवान शंकर के मन में उद्भूत कामेच्छा के परिणामस्वरूप उनके रेतस् का स्खलन हो गया। विष्णु ने इससे पृथ्वीलोक में सम्भावित उत्पातों के निवारणार्थ स्खलित रेतस् को अंजलि में ग्रहण कर गंगा नदी में स्थित एक कमल नाल में सुरक्षित रख दिया। इस कमलनाल से रेतस् के परिणामस्वरूप एक तेजस्वी बालक का जन्म हुआ।

गंगा तटवर्ती पुष्पावती नगरी के राजा गोविन्दचन्द्र का संततिहीन पुरोहित स्वप्न में भगवान शिव से प्रेरणा पाकर सपत्नीक गंगा तट पर गया और बालक को अपने घर ले आया। बालक का नाम 'माधवानल' रखा गया। बालक बड़ा तेजस्वी, रूपवान, प्रतिभाशाली और मेधावी था। बारह वर्ष की अवस्था में नदी-तट पर क्रीड़ारत माधव के मित्रों ने शिला रूप में शापित अप्सरा जयन्ति से उसका विवाह करा दिया। इन्द्र द्वारा प्रदत्त वरदान के अनुसार जयन्ति शाप-मुक्त होकर उड़कर इन्द्रलोक में पहुँच गयी।

माधव द्वारा उपकृत और विवाहिता जयन्ति माधव के विरह में व्याकुल रहने लगी और छिप-छिपकर माधव से मिलने के लिए पृथ्वीलोक में आने लगी। भेद खुल जाने पर शाप के भय से जयन्ति ने जब माधव से मिलना बन्द कर दिया तो माधव स्वयं इन्द्रपुरी पहुंचने लगा।

एक दिन इन्द्र सभा में आयोजित नाटक हेतु प्रस्थान के समय जयन्ति ने माधव को 'भ्रमर' बनाकर अपनी कंचुकी में छिपा लिया। नृत्य करते समय जयन्ति की मनःस्थिति से इन्द्र को जब जयन्ति की कंचुकी में भ्रमर रूप माधव की उपस्थिति का ज्ञान हुआ तो उसने पुनः जयन्ति को पृथ्वीलोक में वेश्या के घर जन्म लेने का शाप दिया। फलस्वरूप जयन्ति ने राजा कामसेन की नगरी कामावती में कामा नामक राज-वेश्या की पुत्री के रूप में जन्म लिया। वेश्या ने उसका नाम काम-कंदला रखा।

इधर विरहातुर माधव के अतिशय रूप-सौन्दर्य और वीणावादन से आकर्षित पुष्पावती नगरी की युवतियाँ और अन्तःपुर की राज-महिषियाँ कामासक्त होने लगीं। नागरिकों द्वारा शिकायत किये जाने पर राजा गोविन्दचन्द्र ने माधव को देशनिकाला दे दिया। पुष्पावती से निष्कासित माधव इतस्ततः भ्रमण करता कामावती नगरी में आ पहुंचा। वह राजा कामसेन की राजसभा में खेले जा रहे 'इन्द्र महोत्सव नाटक' के संगीत को राजद्वार पर खड़ा होकर सुनने लगा। कला निपुण माधव संगीत में विसंगतियों को सुनकर सिर धुनने लगा। कारण पूछे जाने पर उसने राजसभा में पूर्वाभिमुख बैठे अंगुष्ठ-विहीन पखावजी के वादन में स्वरभंग की बात बताई। जब यह बात राजा तक पहुँचायी गयी तो उसने माधव को ससम्मान राजसभा में आमन्त्रित किया और प्रभूत वस्त्राभूषण देकर समादृत किया। कामकंदला और माधव ने राजसभा में एक-दूसरे को देखा।

नृत्यरत कंदला द्वारा अपने कुच पर आ बैठे भ्रमर को पवन-न्यास के बल पर उड़ाते देख माधव की स्मृति लौट आयी। कंदला के कौशल पर प्रसन्न होकर उसने राजा द्वारा पुरस्कार में दी गयी समस्त भेंट कंदला पर न्योछावर कर दी। राजा ने इसे अपना अपमान समझकर उसे दंडित करना चाहा। ब्राह्मण होने के कारण अवध्य जानकर उसने माधव को राज्य से निकाल दिया। एक रात कंदला के साथ रहकर वह कामावती छोड़कर उज्जैन चला आया।

कंदला के विरह में संतप्त माधव ने उज्जैन स्थित महाकाल शिव के मन्दिर में एक विरह गाथा लिखकर छोड़ दी। सम्राट विक्रमादित्य ने उसे पढ़ा तो अत्यन्त दुःखी हुआ। भोग-विलासिनी नामक वेश्या की सहायता से राजा विक्रमादित्य ने गाथा-लेखक माधव की खोज करवायी और उसकी व्यथा का कारण ज्ञात किया।

माधव के प्रेम की परीक्षा लेने की दृष्टि से राजा ने उसको एक-से-एक बढ़कर रूप-सौन्दर्य गर्विता कामिनियाँ देने का प्रलोभन दिया, लेकिन जयन्ति के विरह में आतुर माधव ने उनकी उपेक्षा कर दी। प्रेम-प्रसंग में माधव को खरा मानकर विक्रमादित्य ने कामावती नगरी पर चढ़ाई की और कामसेन को पराजित कर कामकंदला को प्राप्त किया।

कंदला के प्रेम की परीक्षा करने के लिए विक्रमादित्य ने उसके पास माधव की मृत्यु की मिथ्या सूचना पहुंचायी, जिसे सुनते ही कंदला के प्राण-पखेरू उड़ गये। कंदला की मृत्यु की सूचना पाने पर यही अवस्था माधव की भी हुई।

विक्रमादित्य ने अपने मित्र वेताल की सहायता से पाताल लोक से अमृत प्राप्त कर दोनों को पुनर्जीवित किया। विक्रमादित्य के आदेश से कामसेन ने कंदला माधव को भेंट कर दी। इस प्रकार अपनी प्रियतमा को प्राप्त कर माधव पुष्पावती नगरी लौट आया।

ढोला मारवणी चौपई

'ढोला मारवणी चौपई' की कथा का मूल लोक-कथाओं में निहित है। यह कथा कितनी पुरानी है यह निश्चय कर पाना कठिन है लेकिन मुक्तक दोहों के रूप में और लोकवार्ता के रूप में कुशललाभ से बहुत पहले ही इसका अस्तित्व रहा होगा। एक आदर्श पति के रूप में ढोला की लोक में प्रसिद्धि रही होगी, उसी कारण लगभग दसवीं शताब्दी विक्रमी में तो ढोला शब्द पति या नायक के अर्थ ही में प्रचलित हो गया था। हेमचन्द्र सूरि (1182 वि०) ने भी इस तथ्य का संकेत निम्न दोहों में दिया है—

ढोला सामला धण चंपावण्णी,
णाइ सुख एणरेह, कसवट्टइ दिएण्णी ।। 8/4/330
ढोला मइं तुहं वारिया, मा करू दीहा माणु।
निंदूह गमिही रत्तड़ी, दड़वड़ होइ विहाणु ।। 8/4/330
ढोल्ला एह परिहासड़ी, अइमण कंवणहिं देसि।
हउ भिज्जउ तउ केहि तुहुं, पुण अभहि रेसि ।। 8/4/425

इसकी लोकप्रियता के प्रमाण देश के विभिन्न अंचलों में उपलब्ध इस कथा के विविध रूप हैं। भाषा भेद और जनरुचि के अनुसार कथा में सामान्य अंतर के होते हुए भी इसका पूर्ण प्रभाव परिलक्षित होता है। राजस्थानी, ब्रज-भाषा अवधी, छत्तीसगढ़ी, मालवी, भोजपुरी, मैथिली, हरियाणवी, पंजाबी, गुजराती आदि भाषाओं और बोलियों में किसी-न-किसी रूप में इस कहानी के स्वरूप के दर्शन हो ही जाते हैं।

राजस्थानी भाषा में ही ढोला मारू कथा के अनेक गद्य-पद्यात्मक रूप मिलते हैं। ये हैं, विशुद्ध दोहा रूप, कुशललाभ द्वारा संपादित चौपई मिश्रित दोहा रूप, दोहों के पुट से युक्त गद्यवार्ता रूप, और दोहा चौपई मिश्रित गद्यवार्ता रूप। प्रथम दोहा रूप से कतिपय दोहों के विशृंखलित हो जाने के कारण विखंडित कथा रूप की पूर्ति के लिए कुशललाभ ने स्वरचित चौपइयों का बीच-बीच में संयोजन कर दूसरा रूप तैयार किया था। इन सभी रूपों में बहुत कुछ कथा साम्य है, फिर भी उन सबमें कुछ न कुछ नवीन कथा प्रसंग जोड़े गये मिलते हैं।

अन्य रूपान्तरों में कथान्तर इस प्रकार है—

अकाल पड़ने पर पिंगल के राजा की सपरिवार पुष्कर-यात्रा, राज्य-संचालन का भार अपने भाई गोपालदास को सौंपना, नरवरगढ़ाधीश नल की पुत्र प्राप्ति की कामना हेतु बघेरा में वराह-तीर्थ का यात्रा-संकल्प, ढोला और मारवणी की धात्रियों का संवाद, राजा पिंगल की चार पत्नियों के उल्लेख, ढोला मारू के विवाह-हेतु धात्री का नल से परामर्श, नल का अपने प्रधान और रानियो से परामर्श और गोद भराई की रस्म आदि प्रसंग सर्वथा भिन्न हैं।

इसी प्रकार गोपालदास का संदेश, घोड़ों के सौदागर का बाग में डेरा और मारू के विषय में सखियों से पृच्छा, घोड़ों को टहलाने आये नाई के द्वारा सौदागर के विषय में राजा को सूचना, रानी केद्वारा ढोला को संदेश-प्रेषण, संदेशवाहकों की मालवणी द्वारा हत्या, ढाढियों द्वारा संदेश प्रेषण, ढाढियों का नरवर में कुम्हारी के भानजे की सहायता से ढोला से मिलन, ढोला द्वारा मारवणी को प्रेम-पत्री लेखन, मालवणी का षड्यन्त्र, पुरोहित को पूंगल भेजा जाना और उसका ढोला के सम्मुख मारू के रूप-सौंदर्य, शील, सतीत्व का वर्णन, ढोला द्वारा पुष्कर में ढोला मारू के विवाह से सम्बन्धित आरोपित तोरण-स्तम्भों के विषय में पूछताछ, गीत सुनकर ढोला का कुएँ पर जाना और ढोला के आगमन की सूचना राजा को देना आदि तथ्य भी मूल कथा से भिन्न हैं।

ढोला मारवणी चौपई-कथा सार

पूंगल के राजा पिंगल ने दान-ग्रहणार्थ अपने पास आये एक भाट द्वारा जालोर के राजा सामन्तसी देवड़ा की पुत्री उमादेवड़ी के अनुपम रूप-सौन्दर्य का वर्णन सुनकर उससे विवाह किया। उनके एक पुत्री हुई, जिसका नाम मारवणी रखा गया। जब वह डेढ़ वर्ष की ही थी पूंगल में भयंकर अकाल पड़ा। दुष्काल के प्रभाव से बचने के लिए राजा सपरिवार पुष्कर चला गया। उसी समय नलवर-गढ़ का अधिपति राजा नल भी तीर्थ यात्रा के संकल्प से प्राप्त पुत्र ढोला (साल्ह कुमार) की जात देने के लिए पुष्कर आया हुआ था।

वहां आखेट-क्रम में खरगोश का पीछा करते समय मारवणी को देखने का अवसर राजा नल को मिला। उसने अपने पुत्र ढोला के साथ मारवणी के सम्बन्ध का प्रस्ताव पिंगल के पास भेजा, जो सहर्ष स्वीकार कर लिया गया। दोनों का विवाह वहीं सम्पन्न हो गया। विवाह की साक्षी स्वरूप एक शिलालेख उन्होंने पुष्कर सरोवर के तट पर स्थापित कर दिया। स्वदेश लौटते समय राजा नल ने मारू को अपने साथ ले जाने का प्रस्ताव रखा—पर अल्पायु के कारण उस समय न भेजकर पिंगल ने सात वर्ष बाद उसे भेजने का वादा किया।

निश्चित समय तक पिंगल की ओर से कोई समाचार न मिलने पर नल ने ढोला का विवाह मालवा के राजा भीम की कन्या मालवणी से कर दिया। ढोला से उसके प्रथम विवाह की घटना को गुप्त रखा गया। पर एक दिन ढोला की माँ के द्वारा मालवणी को दिये गये तानों में मारवणी की प्रशंसा को सुनकर ढोला को अपने प्रथम विवाह का ज्ञान हो गया। ढोला मारवणी से मिलने के लिए आतुर रहने लगा। ढोला की मनःस्थिति को समझकर मालवणी ने पूंगल से आने वाले यात्रियों का अवरोध करना प्रारम्भ कर दिया—जिससे कोई यात्री ढोला से मिल न पाये।

नलवरगढ़ से पूंगल आये घोड़ों के व्यापारी से ढोला के दूसरे विवाह की बात सुनकर राजा पिंगल ने अपने पुरोहित को ढोला के पास भेजना चाहा। मारवणी भी इस तथ्य से परिचित हो चुकी थी। अतः उसने याचकों के माध्यम से ढोला तक संदेश पहुँचाने का आग्रह किया। पुंगल से तदनुसार याचक भेजे गये। वे भाऊ भाट के माध्यम से ढोला से मिले और मारवणी की विरह-व्यथा सुनाई। ढाढियों को पुरस्कृत कर ढोला ने उन्हें शीघ्र ही पूंगल पहुँचने का आश्वासन देकर लौटा दिया। साथ ही भाऊ भाट को भी मारवणी को आश्वस्त करने के लिए भेज दिया।

ढोला को मारू के विरह में दिन-दिन घुलते देख मालवणी ने ढोला से सीधा इसका कारण पूछा। उसने अनेक बहाने बनाये, पर अन्त में उसे सत्य तथ्य प्रगट करना ही पड़ा। इस अप्रत्याशित आने वाले विरह की कल्पना से ही वह मूर्छित हो गई। अनेक उपायों से उसने चार मास तक ढोला को रोके रखा, पर अन्त में वह मालवणी को सोयी हुई छोड़कर पूंगल के लिए निकल ही गया। मार्ग में अनेक कष्टों का सामना करते हुए वह पूंगल पहुँच गया।

ढोला पानी पीने के बहाने पूंगल के पनघट पर उतरा। मारवणी ने उसे पहचान लिया और वह तुरन्त घर लौट आयी। ढोला के ऊँट की आवाज़ को पहचान कर पिंगल के रेबारी ने भी राजा को ढोला के आगमन की सूचना दी। ढोला की अगवानी हेतु पिंगल अपने आदमियों के साथ कुएँ पर गया। सखियों ने मारवणी को सजाया और प्रियतम से मिलने के लिए भेजा। दोनों ने एक-दूसरे से क्षमा याचना की।

एक पक्ष पर्यन्त ससुराल में रहकर मारवणी सहित ढोला ने विदाई ली। प्रभूत धन धान्य दहेज में देकर राजा ने उन्हें विदा किया। मार्ग में पीवणे सर्प ने मारू के श्वांस का अंचन कर लिया। मारू के इस असामयिक निधन से संतप्त ढोला ने चिता सजाकर जल मरने का निश्चय किया। चिता सजाकर ज्योंही उसने उस पर आरोहण किया, एक योगी और योगिन वहाँ आ उपस्थित हुए। योगिनी के आग्रह पर योगी ने मारवणी को पुनर्जीवित कर दिया। ढोला ने प्रसन्न होकर योगिनी को नवसर हार भेंट किया और नलवरगढ़ की ओर आगे बढ़ गया।

मार्ग में मारवणी के अपहरण की नीयत से आये ऊमरा सूमरा से उनका मिलन हुआ। ऊमरा सूमरा के आमंत्रण से ढोला मद्यपान-हेतु रुक गया। पीहर की डूंमणी के गीतों द्वारा उद्बोधित मारू ने ऊँट को प्रताड़ित किया। ऊँट को संभालने के लिए वापस आये ढोला को मारू ने षड्यन्त्र की जानकारी दी। ढोला और मारू ऊँट पर बैठकर पलायन कर गये। उमरा सूमरा ने उनका पीछा किया, पर असफल रहे।

ढोला सकुशल नरवर पहुँच गया। राजा नल ने उत्सव मनाया। ढोला दोनों

रानियों के साथ सुख से रहने लगा। एक दिन दोनों में अपने-अपने पीहर की विशेषताओं के प्रश्न को लेकर विवाद छिड़ गया। ढोला ने हस्तक्षेप कर इस कटु विवाद को विनोद में परिवर्तित कर दिया और इस तरह वे अनेक सुखोपभोगों को भोगते हुए सुख से जीवन यापन करने लगे।

तेजसार रास

कुशललाभ की कृतियों में 'तेजसार रास' का भी प्रमुख स्थान है। जैन ग्रन्थ भंडारों में इस रचना की अनेक प्रतियाँ उपलब्ध हैं। तपागच्छीय सहज विमल द्वारा सं० 1644 पौष शुक्ला 14 को प्रतिलिपित एक प्रति में इसे 'दीपपूजा विषये रास' संज्ञा दी गई है। श्री प्रेम सागर जैन ने इसी आधार पर उसे दीपपूजा से सम्बन्धित काव्य माना है।

कुशललाभ ने इस ग्रन्थ की रचना सं० 1624 वि० में की थी। जैन ग्रन्थ भंडारों में अनेक ऐसी प्रतियाँ भी उपलब्ध हैं, जिनमें इस ग्रन्थ की रचना सं० 1592 में वृहत्तपागच्छीय वाचक जयमन्दिर के द्वारा किये जाने का भी उल्लेख है। दोनों ही संस्करणों में पूर्ण समानता है। प्रारम्भिक मंगलाचरणात्मक पद और अन्तिम प्रशस्ति में रचयिताओं के नाम, रचना स्थान, गुरुनाम, तथा गच्छ सूचक भिन्नता के अतिरिक्त कथा भाग आदि से अन्त तक एक ही है। ऐसी स्थिति में रचयिता के विषय में निर्णय करने में बड़ी कठिनाई सामने आती है।

कथा स्रोत

'तेजसार रास' की कथा का आधार अवश्य ही जैन महापुराण रहा होगा। संभव है, कोई प्राचीन जैन कथा भी रही हो। 'तेजसार रास' में तेजसार को उपदेश देने वाले मुनिसुव्रत स्वामी का उल्लेख जैन उत्तर पुराण में मिलता है। वे बीसवें तीर्थंकर थे। सम्भव है इसीके आधार पर कुशललाभ ने श्रावक तेजसार और विमला श्राविका की कथा का ताना-बाना बुना हो।

कथा सार

बनारस के राजा वीरसेन की रानी पद्मावती ने स्वप्न में प्रज्ज्वलित दीप देखा। स्वप्न-निमेषी विद्वानों ने इस आधार पर तेजस्वी पुत्र जन्म की भविष्यवाणी की। तदनुसार रानी को पुत्र की प्राप्ति हुई, जिसका नाम तेजसार रखा गया। सात वर्ष की वय में तेजसार की माता का देहान्त हो गया। राजा ने दूसरा विवाह कर लिया, जिससे उसे विक्रमसिंह नामक पुत्र की प्राप्ति हुई। वह तेजसार से द्वेष करने लगा। धीरे-धीरे अपने पिता के स्नेह से भी वह वंचित होने लगा। एक रात अपना अमर-खड्ग लेकर वह घर से निकल गया और त्रंबावती नगरी में

गंगदत्त नामक ओझा के आश्रम में अध्ययन करने लगा।

एक बार गुरु-पत्नी के आदेश से वह वन में घास लेने गया हुआ था कि वहाँ मार्ग भूल गया। एक राक्षस ने उसे मारकर खाना चाहा। प्राण रक्षार्थ भागते राजकुमार ने एक योगी से दंड की प्राप्ति की, जिसकी सहायता से उसने राक्षस पर प्रहार किया और अपनी रक्षा की। राक्षम ने उसे दो विद्याएँ सिखाईं।

जब उसे पता चला कि उनकी गुरु-पत्नी एक सिकोतरी है और एक-एक कर सभी विद्यार्थियों को मार डालेगी तो योगी से प्राप्त दंड और राक्षस से प्राप्त विद्याओं के बल पर उसने गुरुआनी के जादुई कार्यकलापों से अपनी और अपने सहयोगियों की रक्षा की।

गुरु-पत्नी से बचकर वन में भाग जाने पर किसी योगी द्वारा बाँधी गयी विजयश्री नामक रूपसी राजकुमारी को उसने बंधन मुक्त किया। योगी ने उसे रूप-परिवर्तन और अदृश्य होने की विद्या सिखायी। अनेक निजंधरी घटनाओं का सामना करते हुए तेजसार ने विजयश्री, एणामुखी, पुष्पावती आदि [illegible] राज-कुमारियों की इसी प्रकार रक्षा की और उनसे विवाह किये।

अन्त में व्यंतरी के रूप में आकाशचारी अपनी माँ और एणामुखी की माता से उसकी भेंट हुई। दोनों ने मिलकर एक भव्य और सम्पन्न नगर का निर्माण किया जिसका नाम तेजसार के नाम पर तेजलपुर रखा गया। वह अपने शत्रु समरसेन को परास्त करके अपनी सातों रानियों के साथ वहाँ सुखपूर्वक रहने लगा।

कुछ समय बाद अपने पिता वीरसेन के आमंत्रण पर तेजसार सपरिवार बनारस लौट जाता है। वीरसेन सुव्रत स्वामी से दीक्षा लेकर राज्य तेजसार को सौंप देता है। अपनी रानियों से जन्मे आठ पुत्रों के वस्यक होने पर वह उनका विवाह करके उन्हें अलग-अलग राज्य सौंपकर स्वयं भी मुनि सुव्रत स्वामी से संयम की महिमा का उपदेश लेता है। संसार की असारता का अनुभव कर वह वैराग्य धारण कर लेता है। भावी जन्म में वह सिद्ध बनता है—उसके उपरान्त श्रावक कुल में जन्म लेकर केवल ज्ञान ग्रहण करता है और शिवपुर की प्राप्ति करता है।

भीमसेन हंसराज चौपई

भीमसेन हंसराज चौपई भी पूर्व वर्णित काव्यों की भांति ही कथा काव्य है। एल. डी. इंस्टीट्यूट ऑफ इंडोलोजी, अहमदाबाद के संग्रह में उपलब्ध इस प्रति में इसे भावना विषयक काव्य कहा है। इस ग्रन्थ की यही एक मात्र प्रति प्राप्त हो पायी है। कृति के रचनाकाल के विषय में निम्नांकित दोहा प्राप्त होता है—

संवत लोक वेद सिणगार, वर्षारितु जलधर विस्तार ।
श्रावण मास सुकल सप्तमी, रच्यउ रायश्रीगुरुपय नमी ।। 620 ।।

इसके अनुसार संवत लोक वेद सिणगार के श्रावण शुक्ला सप्तमी को ग्रन्थ की रचना की गई थी। लोक शब्द सात और तीन दोनों ही संख्याओं के लिए प्रयुक्त होता है। अतः उक्त दोहे के अनुसार सं० 1647 या 1643 को रचना संवत् माना जा सकता है। दोहे में तिथि के साथ वार का निर्देश नहीं होने से सही संवत् का निर्धारण विवादास्पद ही रहेगा।

प्राचीन जैन वाङ्मय में इस तरह की कोई कथा अभी तक ज्ञात नहीं है, जिसे इस कथा का आदि स्रोत कहा जा सके, पर ऐसी कथा अवश्य ही रही होगी। इस कथा में भीमसेन और राजहंस को धर्मोपदेश देने वाले ऋषि राम का भी नामोल्लेख प्राचीन जैन साहित्य में उपलब्ध नहीं है। कुशललाभ ने मात्र इतना संकेत दिया है कि भगवान महावीर के नवें गणधर अचल भ्राता ने अपने शिष्यों की प्रार्थना पर उनको भीमसेन हंसराज का कथानक सुनाकर भगवान जिनेश्वर की आराधना हेतु प्रेरित किया था। पर कथा के मूल उत्स की ओर उसने कोई संकेत नहीं दिया।

कथा सार

किसी पर्यटक की आलोचना पर श्रीपुर के राजा भीमसेन ने अपने नगर में फल-फूलों से युक्त, तरुलताओं से समाकीर्ण 'नन्दन वन' नामक एक उद्यान का निर्माण किया। राजा के आमात्य सुमति का पांचवां पुत्र हितसागर राजा का अनन्य मित्र था। वह नन्दन वन में आकर यहां के वृक्षों और लताओं के गुणों से सम्बन्धित भीमसेन के प्रश्नों का समाधान करता था।

उधर विशालपुरी के राजा रिणकेसरी और उसकी रानी कमलावती चिन्ता-तुर होकर अपनी यौवन-प्राप्त अद्वितीय सुन्दरी कन्या मदनमंजरी के विवाह की मंत्रणा कर रहे थे। उन्हें जगन्नाथ की यात्रा से लौटे एक संन्यासी के ज्ञानी शुक (पोपट) ने पूछने पर श्रीपुर के राजा भीमसेन के गुणों की प्रशंसा करते हुए राजकुमारी का विवाह उससे करने का सुझाव दिया। मदनमंजरी ने शुक द्वारा कहे गये गुणों के आधार पर मन ही मन भीमसेन को अपने पति के रूप में स्वीकार कर लिया। रानी अपनी पुत्री का विवाह इतनी दूर नहीं करना चाहती थी। अतः उसकी सलाह पर राजा ने सिंहल-द्वीप के राजा सगरराय के साथ अपनी पुत्री का सम्बन्ध निश्चित कर दिया। राजकुमारी ने संन्यासी से निवेदन कर शुक को प्राप्त कर लिया।

दासी के माध्यम से अपने माता-पिता के निर्णय की जानकारी मिलने पर मदनमंजरी ने भीमसेन के साथ ही विवाह की अपनी दृढ़-प्रतिज्ञा को दोहराया।

धात्री द्वारा पुत्री की प्रतिज्ञा की जानकारी मिलने पर भी माता-पिता ने उस पर ध्यान नहीं दिया।

राजकुमारी ने त्रिपुरा देवी की पूजा की और भीमसेन को वर के रूप में प्राप्त करने का वरदान मांगा। उससे अपना प्रेम-संदेश शुक के माध्यम से भीमसेन के पास भिजवाया और सगरराय को पराजित कर उसका वरण करने की प्रार्थना की। प्रत्युत्तर में भीमसेन ने शुक के माध्यम से राजकुमारी को वन में आकर मिलने का संदेश भेजा। तदनुसार वह विवाह के दिन त्रिपुरा देवी की पूजा के बहाने वन में गई। वहीं धाय के द्वारा सदलबल विवाह हेतु सगरराय के आगमन की सूचना मिलने पर मूर्छित हो गई। होश में आने पर भीमसेन से विवाह न होने की स्थिति में अग्नि-प्रवेश की रट लगाने लगी। माता-पिता ने उसे समझाया और सगरराय से राजा ने अपने साले की पुत्री का विवाह कर दिया।

मदनमंजरी रात में सबके सो जाने पर त्रिपुरा देवी के मंदिर में गयी और देवी को उपालंभ देती हुई अपनी ही वेणी से फांसी का फंदा लगा पेड़ पर झूल गई। धाय के हल्ला मचाने पर भीमसेन ने आकर उसके बंधन काटे। शुक द्वारा भीमसेन का परिचय मिलने पर दोनों ने देवी के सम्मुख एक-दूसरे को विवाह सूत्र में बांध लिया। राजा रिणकेसरी और रानी कमलावती पुत्री को जीवित देखकर प्रसन्न हुए।

उधर धोखे का पता लगने पर सगरराय भीमसेन को मारने के उद्देश्य से जंगल में घात लगाकर बैठ गया। उसकी सेना ने विदा होकर लौटते भीमसेन और मदनमंजरी को घेर लिया। भीमसेन ने अकेले ही सगरराय की सेना से युद्ध किया और विजयश्री प्राप्त की। विजयोपरान्त भीमसेन को जब मदनमंजरी निश्चित स्थान पर नहीं मिली तो उसने आग में जलकर प्राणान्त करने की प्रतिज्ञा की। पर शकुन-प्रमाणियों द्वारा आश्वस्त किये जाने पर कि मदनमंजरी सातवें दिन स्वतः उसे मिल जायेगी – उसने आत्महत्या का विचार छोड़ दिया। उधर तृषातुर, भयग्रस्ता, विरह व्यथिता मदनमंजरी भटकती हुई एक सरोवर के समीप आ निकली। एक तपस्विनी उसे अपने आश्रम में ले गयी और आश्रम के पेड़-पौधों से उसका परिचय कराया। तपस्विनी की अनुपस्थिति में उसने एक विषाक्त फल खा लिया। विष के प्रभाव से मूर्छित मदनमंजरी को देख तपस्विनी ने सहायतार्थ पुकार की। अन्य तपस्वियों ने आकर उसका उपचार किया। होश में आने पर अभंगसेन ने मदनमंजरी को भीमसेन की जीत की सूचना दी। भीमसेन भी अपनी प्यारी रानी को पुनः पाकर हर्षित हुआ। वे तपस्वियों के आश्रम में दस दिन तक अतिथि के रूप में रहे। भीमसेन ने तपस्वियों से विषधर के विषहरण तथा अदृष्ट होने की विद्या सीखी। तदुपरान्त वहाँ से विदा होकर वे श्रीपुर पहुँचे।

एक दिन रात में राजा रानी की निद्रा उचट गयी। उन्होंने उनके महल पर

हंसिनी से वार्तालाप कर रहे हंस से सुना कि वह 21 दिन बाद इस देह को छोड़ कर रानी के गर्भ से राजकुमार के रूप में अवतरित होगा। रानी गर्भवती हुई। उसने अमृतफल के आहार का दोहद लिया। रानी का दोहद पूर्ण करने हेतु वन में गये राजा रानी वन में भटक गये। राजा ने वन में कनकलता नामक युवती से विवाह किया। मदनमंजरी के दोहद की इच्छा को हंसिनी ने पूर्ण किया। रानी को पुत्र की प्राप्ति हुई। उसका नाम राजहंस रखा गया। हंसिनी राजहंस के रूप में अवतरित अपने पूर्व-भव के पति राजहंस से यदाकदा मिलती रही।

हंसराज उत्तम अश्वों पर सवारी का अभ्यास करने लगा। एक दिन वह वन में बहुत दूर निकल गया। वह सरोवर में जल पीकर वृक्ष की छाया में विश्राम करने लगा। वहीं उसने एक दुर्दान्त सिंह को मारकर वन्य प्राणियों को निर्भय किया। अमृत फल के प्रभाव से जन्म लेने वाले राजकुमार को सार्विज भाषा का ज्ञान था। उसने फेत्कारी की बोली को समझ कर आधी रात में नदी में बह रही एक स्त्री को बाहर निकाला और उसके पास से प्रभूत धन प्राप्त किया। उसकी खोज में आये अपने पिता भीमसेन के साथ वह श्रीपुर पहुँचा। राजा भीमसेन ने उसे युवराज के पद से विभूषित किया।

राजकुमार हंसराज ने हंसिनी की सहायता से अवंतिपुर की राजकुमारी रूपमती का स्वयंवर में वरण किया। अवंतिपुर से लौटते समय उसकी भेंट अनेक ऋषियों से हुई। उसने ऋषि श्री राम को श्रीपुर पधारने हेतु आमंत्रित किया। ऋषि राम का उपदेश सुनकर राजा भीमसेन को वैराग्य हो गया। अपना राज पाट युवराज हंसराज को सौंप कर उसने संयमभार ग्रहण कर लिया। हंसराज भी श्रावक बनकर संयम नियम से राज्य संचालन करने लगा।

राजहंस को जयभद्र और बलिभद्र नामक दो पुत्रों की प्राप्ति हुई। अपना अंत समीप जान राजहंस ने अपने ज्येष्ठ पुत्र जयभद्र को राज्य सिंहासन सौंप दिया और शुद्ध ध्यान से संथारा करते हुए केवली होकर निर्वाण को प्राप्त किया और भावी जन्म में नवम गणधर श्रीवरण के रूप में अवतरित हुआ।

जिनपालित जिनरक्षित रास

इस काव्य का अपर नाम जिनपालित जिनरक्षित संधिगाथा भी है। अप्रभंश काव्य परम्परा से प्रभावित चौपइयों में निबद्ध इस लघु रचना का प्रणयन कुशल-लाभ ने श्रावण शुक्ला 5 सं० 1621 को पूर्ण किया। इस रचना की विभिन्न प्रतियों में इसमें निबद्ध चौपइयों की संख्या 85 से 91 तक मिलती है। इसका स्रोत भी अद्यावधि अज्ञात है।

कथा सार

चम्पा नगरी में शत्रुजित नामक राजा राज्य करता था। इस नगरी के सेठ माकंदी और सेठानी भद्रा के पुत्र जिनरक्षित और जिनपालित अपने माता-पिता से आज्ञा लेकर व्यापार के लिए देशाटन पर निकले। उनका जहाज तूफान में नष्ट हो गया। किसी प्रकार समुद्र-तट पर पहुँचकर फलों के आहार से उन्होंने अपने प्राण बचाये। एक दिन रयणादे नामक एक सुन्दरी ने विकराल रूप धर इन्हें मारना चाहा। अतिशय अनुनय-विनय पर वह उन्हें अपने घर ले आई और षोडश शृंगारों से सज्जित हो उसने उनसे रमणेच्छा व्यक्त की। उस स्त्री के साथ भोग विलास में लिप्त हो दोनों भाई वहां रहने लगे।

एक दिन इन्द्र के आदेश से दोनों भाइयों को दक्षिण दिशा में भ्रमण के वर्जन सहित अन्य दिशाओं में भ्रमण की अनुमति देकर वह कहीं चली गई। रात दिन वनों में भ्रमण का आनन्द लेते एक दिन वे दक्षिणस्थ वन में जा निकले। उसे उन्होंने विपाक्त गन्ध और मानवास्थियों से समाकीर्ण पाया। वहीं सूली पर चढ़ाये गये विलाप करते किसी पुरुष ने उन्हें बताया कि उसे रणयादेवी ने सूली पर चढ़ाया है और अंततः उनके साथ भी ऐसा ही व्यवहार होने वाला है। उस पुरुष ने उन्हें अपनी रक्षा के लिए पूर्व दिशा में अष्टमी, चतुर्दशी और पूर्णिमा को विहार करने वाले सेलग यक्ष की पूजा की सम्मति दी। निर्देशानुसार उन्होंने यक्ष की पूजा कर उसे सन्तुष्ट किया।

सेलग ने उन्हें यथोचित उपदेश देकर अपनी पीठ पर चढ़ा लिया और सागर पार चम्पापुर की ओर प्रस्थान किया। लौटने पर रयणादेवी ने जब श्रेष्ठि पुत्रों को वहाँ नही पाया तो खड्ग उठा वह उनके पीछे दौड़ी। रयणादे का सेलग से भयंकर युद्ध हुआ। जिनपालित ने सेलग को अपना शत्रु बताते हुए रयणादे से अपनी अनुरक्ति का प्रदर्शन किया। सेलग ने जिनपालित को अपनी पीठ से नीचे गिरा दिया और जिनरक्षित को चम्पापुरी पहुँचा दिया।

कुछ समय पश्चात् वर्द्धमान स्वामी विहार करते हुए चम्पा-नगरी आये। जिनरक्षित द्वारा अपने भाई के विषय में पृच्छा करने पर उन्होंने बताया कि जिन-पालित ने विदेह क्षेत्र में जन्म लिया है और केवली होगा। जिनपालित का वृत्तान्त सुन जिनरक्षित ने दीक्षा ग्रहण करते हुए 'जिनपालित जिनरक्षित संघ' की स्थापना की। संसार को एक विशाल सागर के समान समझ सेलग जैसे गुरु से जैन-धर्म का ज्ञान प्राप्त कर उसने शिवपुर को प्राप्त किया।

अगड़दत्त कुमार रास

अगड़दत्त कुमार रास की रचना सं० 1625 में कार्तिक शुक्ला 15 गुरुवार को वीरमपर में की गई थी। जैसा कि निम्नांकित दोहे से स्पष्ट है—

संवत बाण रद सिणगार, कातिग सुदि पूनिम गुरुवार ।
श्री वीरमपुर नगर मझारि, करी चउपई मति अनुसार ।। 318 ।।

इस रचना की दो ही प्रतियां उपलब्ध हैं—एक बड़ौदा स्थित प्राच्यविद्या मन्दिर में और दूसरी प्राच्य विद्या शोध संस्थान, पूना में। बड़ौदा की प्रति में रचना काल सूचक उक्त दोहे में 'रद' के स्थान पर 'ख' और गुरुवार के स्थान पर रविवार शब्द प्रयुक्त है। इसके आधार पर संवत 1605 के अंकों की प्राप्ति होती है। पर न तो यह शब्द छन्द में उपयुक्त लगता है और न इस संवत में मिति के साथ वार का ही योग बैठता है। जबकि सं० 1625 में प्रदर्शित मिति 'कातिग सुदि पूनिम' के साथ 'गुरुवार' का बराबर मेल मिल जाता है—अतः रचना काल सं० 1625 कातिग सुदि पूनिम गुरुवार ही उचित है।

कथा स्रोत

जैन-साहित्य में इस कथा की बहुत प्राचीन परम्परा रही है। अनेक आख्यान काव्य इसके आधार पर लिखे गये हैं। संस्कृत, प्राकृत, राजस्थानी, गुजराती आदि अनेक भाषाओं में गद्य और पद्य में लिखे कथा के रूप मिलते हैं। इसका प्राचीनतम रूप पांचवीं शती विक्रमी में संघदासगणि द्वारा विरचित 'वसुदेव हिंडी' कथा के उपभाग 'धमिल्ल हिंडी' में अवान्तर कथा के रूप में उपलब्ध है। आठवीं शताब्दी विक्रमी में जिनदास गणि द्वारा रचित उत्तराध्ययन चूर्णिक में भी इस कथा को दृष्टान्त कथा के रूप में ग्रहण किया गया है। वादि वेताल शान्तिसूरि कृत उत्तराध्ययन की पाइय (प्राकृत) टीका तथा सं० 1129 में नेमिचंद विरचित उत्तराध्ययन टीका में 328 प्राकृत पद्यों में दी गयी है। किसी अज्ञात संस्कृत कवि द्वारा 334 श्लोकों में विरचित 'अगड़दत्त चरित्र' श्री विनय भक्ति सुन्दर चरण ग्रंथमाला में प्रकाशित किया गया है। कुशललाभ से पूर्ववर्ती इस कथा की निम्नांकित कृतियां और प्राप्त होती हैं—

(1) अगड़दत्त रास -- रच० भीम-र. का-- सं० 1584
(2) अगड़दत्त मुनि चौपई -- रच० सुमति-र. का—सं० 1601

—कुशललाभ के उपरान्त भी इस विषयक अनेक रचनाएँ रची गई मिलती हैं।

कुशललाभ कृत 'अगड़दत्त रास' इससे पूर्व विरचित प्राकृत भाषा—निबद्ध अगड़दत्त रास और भीम कवि द्वारा प्रणीत 'अगड़दत्त रास' का ही संशोधित विस्तृत रूप कहा जा सकता है, पर उक्त रचनाओं से कुशललाभ की रचनाओं में पर्याप्त अन्तर है। वह अंतर अगड़दत्त के माता-पिता, आचार्य, अध्ययन स्थान, प्रेमिका के नाम आदि और काव्य में वर्णित घटना प्रसंगों से संबंधित ही मुख्य है।

भीम कृत 'अगड़दत्त रास' पाँच खण्डों में तथा 460 दोहा, चौपइयों में रचित

है। पर कुशललाभ ने भीम के शिल्प को न अपना कर पूर्ववर्ती अन्य कवियों का अनुकरण किया है। पूर्ववर्ती कवियों ने काव्यारंभ में सरस्वती स्तुति के साथ उसका नखशिख वर्णन किया है—पर कुशललाभ ने सरस्वती वन्दना में सात्विक धार्मिक आचरण का अनुपालन किया है। उसका प्रकृति वर्णन या नखशिख वर्णन भी वसुदेव हिंडी, भीम या सुमति रचित रास काव्यों की तरह विस्तार लिए हुए नहीं हैं।

कथा सार

बसंतपुर में राजा भीमसेन राज्य करते थे। उसके बलशाली सामन्त सूरसेन का वध एक प्रवासी सुभट ने द्वन्द्व-युद्ध में कर दिया। राजा ने उस सुभट को अपना सेनापति नियुक्त कर उसका नाम अभंगसेन रखा।

अभंगसेन के डर से सूरसेन की पत्नी ने अपने रूपवान पुत्र अगड़दत्त को सूरसेन के मित्र सोमदत्त के पास विद्याध्यन के लिए चम्पापुरी भेज दिया। सोमदत्त ने उसके भोजन और निवास की व्यवस्था एक व्यवहारी के घर कर दी। अगड़दत्त एक दिन जब पेड़ की छाया में सो रहा था, व्यवहारी की पुत्री मदनमंजरी ने आकर उससे प्रणय-निवेदन किया। उसने अगड़दत्त को बताया कि उसका पति सुदीर्घ काल से परदेश गया हुआ है और अभी तक नहीं लौटा। अगड़दत्त ने उसके प्रणय-निवेदन को स्वीकार कर विध्याध्ययन की समाप्ति पर उससे विवाह कर लेने का वचन दिया।

शिक्षा समाप्त कर अगड़दत्त जब घर लौटने को तैयार हुआ, सोमदत्त ने जो अगड़दत्त और मदनमंजरी की प्रणय लीला से परिचित था, राजा से उसकी कुलीनता का परिचय देकर उसे सम्मानित कराया। उसी समय किसी महाजन द्वारा नगर में चोरों के आतक की शिकायत पर राजा ने सवा लाख के पारितोषिक सहित चोरों को पकड़ने हेतु बीड़ा घुमाया। अगड़दत्त ने बीड़ा स्वीकार कर चोरों को सात दिन में पकड़ लाने का वचन दिया।

छः दिन तक निरन्तर वेश्याओं और जुवारियों के घरों में भटकने के उपरांत योगी का वेश धारण किये वांछित चोर से उसकी भेंट हो गई। अगड़दत्त ने उससे मैत्री कर ली और उसके साथ चोरी करने निकल गया। सागरसेवी नामक व्यवहारी के घर चोरी करने के उपरांत सोये हुए श्रमिकों की हत्या का प्रयास करते योगी रूपधारी चोर पर अगड़दत्त ने तलवार से प्रहार किया। मरने से पूर्व चोर ने उसे अपने खजाने का पता बताकर अपनी तलवार उसे सौंपते हुए बताया कि वह उसकी बहिन वीरमती से विवाह कर ले, जिसने अपने भाई को मारने वाले से ही विवाह करने की प्रतिज्ञा कर रखी है।

चोर के कथनानुसार वह वीरमती के पास पर्वत की गुफा में गया। वीरमती ने

उसे मारना चाहा, पर त्रिया-चरित्र के पारखी अगड़दत्त ने वीरमती के छलछद्म पूर्ण आघातों से अपनी रक्षा कर वीरमती और खज़ाने पर अधिकार किया और उन्हें राजा के पास ले आया।

अगड़दत्त ने अपने वचनों के अनुसार मदनमंजरी से विवाह किया और अपार धन और सेना सहित बसन्तपुर के लिए प्रस्थान किया। पर मार्ग में वह भटक गया। उसे मार्ग में आने वाले संकटों की पूर्व सूचना दे दी गयी थी। मदनमंजरी ने भी उसे उस मार्ग से जाने से टोका, पर उसने एक न सुनी। फलतः एक एक कर उसे नदी, सिंह, सर्प और चोरों से संबंधित चार संकटों का सामना करना पड़ा, और उसने सब पर सफलता पाई।

बसन्तपुर के समीप आने पर उसके परिजनों ने आगे आकर मार्ग में ही उसका स्वागत-सत्कार किया। उसने सरोवर के समीप अपने पितृहंता अभंगसेन को द्वन्द्व-युद्ध में मार डाला और परिजनों को बसन्तपुर के लिए विदा कर मदनमंजरी सहित क्रीड़ा के लिए वहीं ठहर गया।

वहां मदनमंजरी को परपुरुष के साथ संभोगरत देख एक नभचारी विद्याधर ने उसे मारने का विचार किया। पर उससे पूर्व ही एक सांप ने उसे डंस लिया सर्प-दंश से मृत्यु-प्राप्त मदनमंजरी के साथ अगड़दत्त ने जल मरने का विचार किया, पर विद्याधर ने मदनमंजरी को जीवनदान देकर अगड़दत्त को अपने निश्चय से रोक लिया। विद्याधर ने अगड़दत्त के प्रेम की प्रशंसा करते हुए आकाश मार्ग से देखी मदनमंजरी की परपुरुष के साथ प्रणय-लीला की घटना कह सुनाई।

उसी रात मदनमंजरी ने देहरे में छिपे चोरों की सहायता से अगड़दत्त को मार डालने का प्रयत्न किया। मदनमंजरी असफल रही, पर इस घटना से चोरों के मन में वैराग्य उत्पन्न हो गया। उन्होंने चोरी का परित्याग कर एक जैन मुनि से दीक्षा ले ली। अगड़दत्त मदनमंजरी के साथ घर पहुँचा। उसको पुत्र प्राप्ति हुई।

एक दिन भ्रमण करते हुए वह उस स्थान पर जा निकला जहां भुजंगम नामक चोर अपने साथियों के साथ तपस्यारत था। अगड़दत्त द्वारा उनसे वैराग्य का कारण पूछा जाने पर उन्होंने मदनमंजरी द्वारा देहरे में अगड़दत्त की हत्या के प्रयास वाली सारी घटना सुनायी। अगड़दत्त ने वहीं भुजंगम से दीक्षा ग्रहण कर ली और नवम् गवाक्ष को पार कर शिवपुरी की प्राप्ति की।

श्री पूज्यदाहण गीत-कथा सार

इस रचना में कुशललाभ ने गुरु की महिमा का बखान किया है। उसने गुरु के स्तवन को ही भवाम्बोधि से पार उतारने में समर्थ एक वाहन या पोत की संज्ञा दी है। इस गीति रचना में आदि जिनेश्वर, शरणागत वत्सल **सप्तम तीर्थंकर** सुपार्श्व, शांति के अग्रदूत सोलहवें **तीर्थंकर** शान्तिनाथ, बाईसवें **तीर्थंकर** नेमि-

नाथ स्वामी और चौबीसवें तीर्थंकर वर्द्धमान के प्रशस्त कार्यों का गुणगान किया है। भवसागर से पार उतारने वाले वाहन ये ही वर्धमान स्वामी कहे गये हैं, जिन की पूजा कर, भण्डारी वीरजी, रांका, नागजी, वच्छा, पदमजी, भाण, मांडण, आंबड़, मनु, सहजिया आदि श्रावकों ने इच्छानुसार फल की प्राप्ति की। जिनकी पाटण जैसे महान नगर में प्रतिष्ठा की गई। जिनचन्द्र सूरि ने अंबावती नगरी के लिए संघ का नेतृत्व कर वहाँ भगवान वर्द्धमान की प्रतिमा की प्रतिष्ठा की, श्रावक संघ को जैन समवसरण का उपदेश दिया और गुरु का स्तवन करते हुए दीक्षा आदि अनेक धार्मिक कार्यों को सम्पन्न किया।

जैन-भक्ति-तत्व से आवृत्त जिनेश्वर के प्रवचन को सुन समझकर तरु-राजि तक आह्लादित हो उठी। गुरु की देशना के प्रभाव से आकाश में बादल गर्जना कर रहे हैं। कोकिला के मधुर पंचम स्वर में भी गुरु-महिमा के गीत की ही संगीति है। मोरों के नाच और चकोरों के नयनों में भी गुरु के उपदेश का भाव व्यंजित हो रहा है। विश्व को सुगंधित करनेवाली शीतल मन्द सुगंधित अनिल में भी गुरु के उपदेश की सुगंधि प्रसारित कही गयी है। यह है गुरु से संबंधित श्री पूज्यवाहण गीत का भाव।

सुन्दर और सरस भावों से युक्त यह गीति-काव्य अत्यन्त ही सुन्दर बन पड़ा है। कवि ने इसे आसावरी, सामेरी, रामगिरि, केदार, गौडी, गोड मल्हार आदि रागों और अनेक ढालों में निबद्ध कर इसे और भी अधिक प्रभावोत्पादक बना दिया है।

स्थूलिभद्र छत्तीसी

आचार्य स्थूलिभद्र की प्रशंसा में विरचित इस काव्य में भी ब्रह्मचर्य की महिमा को प्रतिपादित करते हुए गुरु की महिमा का ही बखान किया गया है। यह कृति कुल 36+1= 37 पद्यों में रचित है। इसमें रचनाकाल विषयक कोई साक्ष्य उपलब्ध नहीं है।

कथासार

ऋद्धि-सिद्धियों से सम्पन्न पाटली नगर के आमात्य के स्थूलिभद्र और श्रीवंत नामक दो पुत्र थे। स्थूलिभद्र कोशा नाम की नगर-वधु पर अनुरक्त था। वह अपनी सोलह वर्ष की वय में ही संभूति विजय से दीक्षा लेकर श्रावक बन गया था। उसने अपने गुरु के आदेश से नगर-वधु कोशा की चित्रशाली में चातुर्मास व्यतीत किया—पर वहाँ के वातावरण से सर्वथा अप्रभावित रहते हुए वह गुरु के आश्रम में पुनः लौट आया।

गुरु ने जब स्थूलिभद्र का विशेष स्वागत सत्कार किया तो अन्य श्रावकों को

उससे ईर्ष्या हो गयी। आगामी वर्ष में उनमें से एक अन्य श्रावक ने भी कोशा की चित्रशाला में चातुर्मास बिताने की आज्ञा मांगी। गुरु के द्वारा बार-बार समझाये जाने पर भी जब वह नहीं माना तो गुरु ने आज्ञा प्रदान कर दी। प्रथम रात्रि में ही कोशा के रूप-सौन्दर्य से प्रभावित होकर उसने अपने आपको कोशा को समर्पित करना चाहा। कोशा ने समर्पण के लिए श्रावक के सम्मुख नेपाल से रत्न-जटित कंबल लाकर उसे भेंट करने की शर्त रखी। श्रावक ने नेपाल से रत्न-जटित कम्बल लाकर शर्त के अनुसार कोशा को भेंट कर दिया। कोशा ने उस कंबल से अपना शरीर पोंछा और उसे गन्दी नाली में फेंक दिया। श्रावक ने जब इस पर आपत्ति की तो कोशा ने उसे उत्तर दिया, "जब तुमने अपने शरीर रूपी अमूल्य रत्नजटित कंबल को ही मुझ जैसी गंदी नाली में फेंकने का निश्चय कर रखा है तो उसकी तुलना में तुम्हारा यह रत्न-जटित कंबल तो कुछ भी नहीं है।" वेश्या के वचनों ने श्रावक के हृदय को विद्ध कर दिया। अत्यन्त लज्जित हो वह गुरु की शरण में गया और क्षमा याचना करने लगा।

थंभण पार्श्वनाथ स्तवन

इस स्तवन की रचना कुशललाभ ने चैत्र शुक्ला 11 सं० 1638 को खंभात नगर में की थी। इस आशय का उल्लेख जैन गूर्जर कविओ, भाग 3 खण्ड 1—पृष्ठ 687 पर मिलता है। 'इंडियन ऐफेमेरीज़' से तिथि और वार का उक्त संवत में मेल बैठ जाता है। अतः उक्त रचना तिथि उपयुक्त ही प्रतीत होती है।

स्तम्भन पार्श्वनाथ की स्तुति में संस्कृत राजस्थानी आदि भाषाओं में अनेक स्तवन रचे गये हैं। संस्कृत में विरचित ऐसे स्तवनों का संकलन तरुण-प्रभाचार्य और जिन सोमसूरि ने मंत्राधिराज कल्प में किया है। कुशललाभ द्वारा रचित प्रस्तुत स्तवन इसी परंपरा की राजस्थानी भाषा निबद्ध रचना है।

यह एक धार्मिक यात्रा विषयक काव्य है। कवि निर्दिष्ट स्थल पर पहुंच कर भगवान जिनेश्वर की प्रतिमा और सत्तर भेदी पूजा के दर्शन से प्रभावित होने की ओर इंगित करता है। जिनेश्वर की स्तुति, थंभण पार्श्वनाथ के नामकरण और उसकी उत्पत्ति, द्वारका नगरी के महत्त्व, और अनेक स्थानों पर प्रतिमा स्थापन का महत्व बताते हुए कवि ने स्थंभन पार्श्वनाथ के माहात्म्य का प्रतिपादन दृष्टान्तों के आश्रय से किया है। कवि ने इस स्तवन की गाथा सं० 11 में पालिताणा नगर में रहते हुए प्रसिद्ध रसायन शास्त्री नागार्जन के रासायनिक प्रयोग और स्वर्णादिक की सिद्धि का भी उल्लेख किया है।

स्तवन सार

राम और लक्ष्मण द्वारा सभी मनोरथों को सिद्ध करनेवाले जिनवर की स्तुति

करने से सात मास और नव दिनों में समुद्र का पानी स्तंभित (मर्यादित) हो गया। इस चमत्कारी घटना के कारण इस स्थान का नाम थंभणा (स्तंभन) रखा गया। और उसी प्रसंग से समीपस्थ वन में उसी नाम (स्तंभनक) से पार्श्वनाथ की मूर्ति स्थापित की गयी। इस तीर्थ की महिमा अपार है। श्री कृष्ण ने द्वारका में जिनवर की प्रतिमा स्थापित की। कुन्तनगर में सेढका नदी के किनारे पलाश वृक्ष के नीचे स्थापित जिन-प्रतिमा वालू से ढंक गयी थी। उस स्थान पर प्रतिदिन एक गाय दूध की धारा का स्राव करती थी, जिससे वह भूमि चिकनी हो गयी। कुशललाभ के गुरु अभयदेव ने इस सेढका नदी में स्नान किया और उक्त जिनवर की पूजा और स्थापना की। उससे उनका रक्त-पित्त रोग दूर हो गया। ऐसे हैं स्तंभनक पार्श्व, जिनके स्मरण मात्र से रोग दूर हो जाते हैं और खंभात की यात्रा करने से सभी मनोरथ पूर्ण होते हैं।

गौड़ी पार्श्वनाथ स्तवन

इस रचना की अनेक प्रतियाँ हस्तलिखित ग्रंथागारों में उपलब्ध हैं। कहीं इसे स्तवन कहा गया है तो किसी प्रति में छंद। वैसे छंद का अर्थ भी स्तवन या स्तुति ही होता है। इसके रचनाकाल के विषय में भी अद्यावधि उपलब्ध प्रतियों में कोई उल्लेख नहीं मिलता।

संस्कृत में यशोविजय द्वारा विरचित 'गौड़ी पार्श्वनाथ स्तवन' अत्यधिक प्रसिद्धि प्राप्त है। राजस्थानी भाषा में भी इस विषयक अनेक स्तवन रचे गये मिलते हैं। कुशललाभ द्वारा विरचित 'गौड़ी पार्श्वनाथ स्तवन' में कुल 23 पद्य हैं।

इसमें प्रारम्भ ही में की गयी सरस्वती वन्दना में सरस्वती को सुराणी, स्वामिनी, वचन-विलास की ब्रह्माणी और विश्व-व्यापी ज्योति विशेषणों से अलंकृत कर वन्दन किया गया है। कुशललाभ ने इसमें मनुष्य को ही नहीं, देव, असुर, इन्द्र, व्यंतर, विद्याधर आदि को भी गौड़ी पार्श्वनाथ की वंदना करते हुए प्रदर्शित किया है। उन्हें विश्वनाथ, चिन्तामणि के समान मनोवांछित कामनाओं का पूरक और अपार शक्ति सम्पन्न देव भी कहा गया है। स्तवन के फल की महिमा का बखान करते हुए कहा है कि गौड़ी पार्श्वनाथ के ध्यान से धरा के सभी कष्ट दूर होते हैं और मनुष्य कुवृत्तियों से सदा दूर रहता है। गौड़ी पार्श्व-नाथ नवकोटि मारवाड़ के अधिपति के रूप में भी संबोधित किए गए हैं।

नवकार छन्द

उन्नीस छन्दात्मक इस लघु रचना में कवि ने पंच परमेष्ठि भगवान जिनेश्वर की महिमा का गान किया है। नवकार मंत्र को जैन सम्प्रदाय में महामंत्र की संज्ञा दी

गयी है और इसे सभी मनोरथों का पूरक कहा है। इस मंत्र द्वारा पंच परमेष्ठि का नित्य नियमित पाठ सुख संपत्तियों और विविध ऋद्धियों सिद्धियों का प्रदाता सिद्ध होता है। कहा गया है कि नियमपूर्वक नवकार के नियमों का पालन करने से राजा श्रीपाल की प्रसिद्धि हुई। इसके विधिवत जाप से विष धारण करने वाला सर्प भी अमृत-स्रवण करने लगता है। इसके आदि और अन्त का किसी को ज्ञान नहीं है। अतः पांचों प्रकार के प्रमादों और विषयों को त्याग कर पंच-परमेष्ठि पंचज्ञान, पंचदान, पंचचरित्र आदि पाँच आचारों का पालन आवश्यक है। कवि ने नवकार के प्रभाव से हिंसक पशु पक्षियों में अहिंसा के भाव जाग्रत होते और संकट ग्रस्तों को संकट से उबरते प्रदर्शित कर नवकार की महिमा का गान किया है।

भवानी छंद

इस रचना का अपर नाम 'भवानी स्तोत्र' भी मिलता है। इसमें मातृकाओं में भवानी रूप की महिमा का गान किया गया है। कहा गया है कि भवानी की कृपा से भक्त ऋदि सिद्धियों के साथ-साथ मनोहर भक्ति, सौभाग्य और साम्राज्य प्राप्त कर सकता है। सुख, संपत्ति और संतति की प्रदाता उस भगवती की सेवा करके इन्द्रादिक देवगण स्वर्ग में अपने अविचल साम्राज्य का सुखोपभोग कर रहे हैं। कवि कुशललाभ ने भगवान शिव से प्राप्त सिद्धि के माध्यम से पिंगल सम्मत काव्य रचना करने वाले निष्णात कवियों की तुलना में अपने को मूर्ख, मतिहीन और तुच्छतर तुकबन्दी करने वाला मानकर पारंपरिक रूढ़ि के अनुसार अपने विनय भाव को प्रदर्शित किया है। कवि ने भवानी छन्द की रचना का उद्देश्य मात्र अपनी जिह्वा का पवित्रीकरण कहा है।

शत्रुंजय यात्रा स्तवन

75 गाथाओं में निबद्ध इस रचना का प्रारम्भ कुशललाभ ने माघ शुक्ला 10 रविवार सं० 1644 को किया और चैत्र सुदि पंचमी संवत 1645 को अपनी शत्रुंजय यात्रा की समाप्ति के साथ ही, रचना की समाप्ति का भी संकेत दिया है। शत्रुंजय यात्रा विषयक इस रचना में इस तीर्थ की महिमा, खरतर गच्छीय जिनचंद्र सूरि के साथ निकाले गए संघ का वर्णन, यात्रा में आई मार्ग की कठिनाइयों, मुगल शासकों की लूटमार, उनके साथ हुए युद्ध, लुटेरों को संघ के द्वारा स्वर्ण मुद्राओं की भेंट देकर यात्रा को निरापद बनाने आदि का वर्णन किया गया है। यह स्तवन अपूर्ण ही प्राप्त हुआ है, पर देश की तत्कालीन परिस्थितियों पर अच्छा प्रकाश डालता है।

दुर्गा सातसी

'दुर्गा सातसी' की रचना मार्कण्डेय पुराणगत दुर्गा सप्तशती के आधार पर की गई है। इसमें 366 छंद हैं, जिनमें से 362 छंदों में माता दुर्गा के जन्म और लोक कल्याणार्थ सम्पन्न किए गये महत्त्वपूर्ण कार्यों का वर्णन किया गया है। देवी की अजेय शक्ति को इसमें असुर संहारिणी, देव-रक्षिणी तथा मानव के लिए कल्याण-कारिणी कहा गया है।

कुशललाभ ने मूलकथा में आवश्यकतानुसार यत्र-तत्र पर्याप्त परिवर्तन किया है, पर युद्ध-वर्णन, रण-कौशल और देवी के माहात्म्य का वर्णन करने में वह सफल नहीं हो पाया है। मूल कथा में कुशललाभ द्वारा किये गये कतिपय अन्तर इस प्रकार है। राजा सुरथ और वैश्य की वन में भेंट तो होती है पर वे एक-दूसरे का परिचय प्राप्त नहीं करते। कवि ने उनके अन्तर्द्वन्द्व को भी नहीं दर्शाया है। मूल कथा में मार्कण्डेय ऋषि, राजा और वैश्य की कथा सुनने की इच्छा की ओर संकेत मात्र करते हैं, पर दुर्गा सप्तशती में कवि स्वयं सम्पूर्ण कथा कहता है। मूल में मधु और कैटभ का जन्म कान के मैल से बताया गया है, इस रचना में कान से उनका जन्म बताया गया है, मूल के समान इसमें सौ वर्षों तक चलने वाले देवासुर संग्राम का कोई उल्लेख नहीं है। मूल कथा में देवी को सुग्रीव शुंभ का संदेश सुनाता है, पर इस कथा में शुंभ स्वयं सुग्रीव को योग्य मानकर देवी के पास संदेश देने भेजता है, जो अपनी बुद्धि के अनुसार देवी से बात करता है। प्रस्तुत रचना में देवी विषकन्या के रूप में शुंभ से विवाह करती है और शुंभ की आज्ञा से ही रक्त बीज को मारती है। मूल के समान सुरथ वैश्य द्वारा की गई देवी की स्तुति, देवी के द्वारा प्राप्त वरदानों का वर्णन भी काव्य में नहीं है, अन्त में कवि ने देवी के विविध रूपों की वंदना की है। कुशललाभ ने जैन होते हुए भी मार्कण्डेय पुराणगत 'दुर्गा सप्तशती' की कथा को हिन्दुओं के समान महत्त्व दिया है।

पिंगल शिरोमणि

यह राजस्थानी भाषा का प्रथम लक्षण ग्रन्थ है, जिसमें छंद, अलंकार, कोश (नाम माला), डिंगल गीत-छन्द, प्रहेलिका आदि विषयों को समाविष्ट किया गया है। सम्पूर्ण सामग्री आठ अध्यायों में विभक्त की गई है। इसके रचियता और रचना-काल दोनों ही के विषय में विद्वानों में मतभेद है। कतिपय विद्वान जैसलमेर के रावल हरराज को, जो कुशललाभ का शिष्य था, इस ग्रन्थ का रचयिता मानते हैं। इस ग्रन्थ की पुष्पिकाओं में 'ढोला मारवणी चौपई' और 'माधवानल काम कंदला चौपई' की भाँति कुशललाभ ने यह स्पष्ट किया है कि उसने राजकुमार हरराज के कुतूहल के लिए ही इस ग्रन्थ की रचना की है। रचयिता के रूप में

अपने आश्रयदाता का नाम देने की उस काल की परिपाटी के अनुसार ही कुशललाभ ने हरिराज को रचना का श्रेय दिया है। ग्रन्थ में गुरु-शिष्य के मध्य प्रश्नोत्तर शैली का आश्रय लिया गया है।

प्रस्तुत ग्रन्थ में रचनाकाल विषयक निम्नांकित दोहा पुष्पिका के रूप में प्राप्त होता है :—

पांडव मुनि सर मेदनी, सुकल पख्य नभ मास।
तिथ नवमी रविवार तिम, जेसल हरियंद वास॥

इस दोहे के अनुसार 'अंकानां वामतो गतिः' सिद्धांत के अनुसार संवत् 1575 वि० (पांडव 5, मुनि 7, सर (शर) - 5 और मेदिनी = 1) श्रावण शुक्ला 9 रविवार निर्धारित होता है—पर वह पंचांग से प्रमाणित नहीं होता। कुशललाभ और हरराज का भी इस संवत् में अस्तित्व तक नहीं था—ऐसी स्थिति में रचनाकाल पर भी पुनर्विचार की आवश्यकता थी। प्रस्तुत लेखक की मान्यता है कि रचनाकाल विषयक इस दोहे में अवश्य कोई विसंगति हुई है। लेखक की सम्मति में यह दोहा निम्न प्रकार होना चाहिए—

पांडव मुनि रस मेदनी, सुकल पख्य नभ मास।
तिथ नवमी रविवार तिम, जेसल हरियंदवास॥

इसमें मुनि से तात्पर्य (व्याकरण शास्त्र के प्रसिद्ध आचार्य मुनित्रय पाणिनी, कात्यायन और पतंजलि के आधार पर) 3 की संख्या से है। 'सर' के स्थान पर 'रस' पाठ ग्रहण करने पर 5 के स्थान पर 6 संख्या प्राप्त करने से सं० 1635 वि० की निष्पति होती है। दोहे में दिये गए संवत्, तिथि, वार आदि का मेल इस निष्पति से बराबर बैठ जाता है। पर हरराज की मृत्यु पौष शुक्ला 8 मी मंगलवार सं० 1634 में हो गई थी—अतः यही कल्पना की जा सकती है कि हरराज की युवराजावस्था में विरचित ग्रन्थ को व्यवस्थित रूप कुशललाभ ने उसकी मृत्यु के उपरान्त दिया होगा। यह भी सम्भव है कि रचना तिथि में प्रदर्शित सम्वत् का प्रारम्भ श्रावणादि या कार्तिकादि हो, जिससे गणना में एक वर्ष का अन्तर आ जाना सम्भव है। कुशललाभ ने हरराज के लिए सं० 1616 में माधवानल कामकंदला चौपई की और सं० 1617 में 'ढोला मारू चौपई' की रचना की थी। उसके द्वारा विरचित अन्तिम प्राप्त रचना का काल सं० 1648 वि० मिलता है—ऐसी स्थिति में पिंगल शिरोमणि की रचना या रचनोपरान्त व्यवस्थित करने का काल इसी अवधि में होना सम्भव है और वह सं० 1635 ही रहा होगा। कवि ने अपने जीवन के अन्त तक भी इस कृति में कुछ उदाहरण-परक अंश जोड़े घटाये होंगे। इस सम्भावना से इन्कार नहीं किया जा सकता।

कुशललाभ ने 'पिंगल शिरोमणि' ग्रन्थ में विवेचित विषय-वस्तु की रूपरेखा के प्रस्तावना भाग में ईशवन्दना, लघु-गुरु, गण, वर्ण, छन्द आदि का परिचय

दिया है। सगग्र विषय-वस्तु को कवि ने आठ अध्यायों में विभाजित किया है पर यह सब अव्यवस्थित-सी है। कहीं अध्यायों का स्पष्ट उल्लेख है और कहीं कोई उल्लेख तक नहीं किया गया है। मात्र विषय का शीर्षक देकर नये अध्याय के प्रारम्भ की सूचना दे दी गयी है। अध्यायों को 'प्रकाश' संज्ञा दी गई है। प्रथम प्रकाश के उपरान्त एकदम पंचम प्रकाश का उल्लेख है। छठे प्रकाश में मात्र 'अथ अलंकार वर्णन' शीर्षक दिया गया है। इसी प्रकार 'सासोत्तरा' विषयक प्रकरण को अन्त में 'इति सासोत्तरा' लिखकर मात्र इस अध्याय के अन्त की सूचना दे दी गई है। उडिंगल नाम माला और प्रहेलिका विषयक स्वतन्त्र अध्यायों की प्रतीति भी उनके अन्त में उल्लिखित 'इति उडिंगल नाम माला' और 'इति प्रहेलिका' शीर्षक से होती है। पुष्पिका के आधार पर गीत प्रकरण को अन्तिम अध्याय माना जा सकता है। ऐसी स्थिति में पूरा ही ग्रन्थ पुनः व्यवस्थित और संशोधित करने के उपरान्त पुनर्संपादन की अपेक्षा रखता है।

कवि ने विभिन्न पौराणिक कथाओं का आश्रय लेकर ग्रन्थ में निहित विषय-वस्तु को समझाने का प्रयास किया है। उसने वार्णिक छन्दों के उदाहरण शिव-कथा के आधार पर विरचे हैं तो मात्रिक छन्दों के उदाहरणों के लिये रामकथा के प्रसंगों को आधार बनाया है। छन्द शास्त्रीय ग्रन्थों के लिये यह पारम्परिक प्रणाली कही जा सकती है। गीत प्रकरण की रचना कवि ने छन्दों के लक्षण परक दोहों के साथ-साथ ऐतिहासिक पात्रों की प्रशस्ति और राम, हनुमान, कृष्ण, विष्णु, गरुड़ आदि पौराणिक देवी-देवताओं के भक्ति परक गीतों की संरचना द्वारा की है।

छन्द निरूपण

पिंगल शिरोमणि में प्रथम प्रकाश से चतुर्थ प्रकाश पर्यन्त कवि ने वार्णिक, मात्रिक, दण्डक और मिश्र (संकर) जाति के छन्दों, उनके भेदोपभेदों, लघु-गुरु अक्षरों, गण, वर्ण, जाति आदि का वर्णन प्रस्तुत किया है।

वार्णिक छन्दों में ससमुखी, धारामती, गायत्री, चूडा (चूड़ामणि), वर्ण, मधुमति, कुमारी, हंसमाला, भाणय, विज्जुमाला, अर्द्धनाराच (अनुष्टुप), हल-मुखी, ससिभुजा, वृहती (कुंभवती), पाणूं, अमृतगति, सुद्ध विराटी, मयूरणी, रुक्मवती, हंसी, भत्ता, मनोरमा, चम्पकमाला (पंक्ति), इन्द्रवज्रा, मोतियदाम, भुजंगप्रयात्, कामणी-मोहण, भंजवती, चन्द्रकला (अतिजगती), अपराजिका, हेमंत, भणय, अपराजित, प्रहरणी, इन्दुवदना, मालणी, पचचामर, (सक्खरी) निकर, वृद्धनराइ (वृद्धनाराच), मंदाक्रान्ता (अपरा), मेघ-विस्थूरणी, सादूल-विक्रीडित, सुवदना (कृति), मालती, भद्रक, ललित, क्रीडा, अरवैं, क्रौंच, भुजंग-विजृम्भित का विवेचन किया है।

मिश्र या संकर छन्दों में कवित्त (छप्पय), मल्ल, प्रमाण, संखनारी, मालती, तोमर (हणूफाल), मधुभार, अनुकूला छन्दों को, दण्डक में घनाक्खरी, दुमिला, और मत्तगयंद को, तथा मात्रिक छन्दों में पद्धरी, विपरजय, विताल, गीया, सरसी, काव्य, उधोर, चौपई, दूहा, सोरठा, मोरकला, कुंडलिया, दढिया, नीसाणी पद्मावती, दण्डक माला, गाथा, झंपटाल, छप्पय, अनुष्टुप, विअक्खरी, पादाकुलिक, चौबोला, उल्लाला, सवैया, अनुक्रमगति, मरहठ्ठा, हंसगति, दीपक, लीलावती, गति, लल्ल, चन्द्रकला, लोल, कलरंजण, कलसार, धार, अमृतधुनि, विकृति, सुकृति, रड्डा, अरहट्टा और नारी छन्द सम्मिलित किये गए हैं। इस प्रकार प्रथम प्रकाश से चतुर्थ प्रकाश और प्रस्तार विषयक पंचम अध्याय तक कुल 104 छन्दों का उल्लेख मिलता है। कतिपय छन्द ऐसे भी हैं, जिनका उल्लेख उपभेदों के रूप में किया गया है।

इनमें से अधिकांश छन्द संस्कृत से ग्रहण किये गये हैं। दूहा, छप्पय, कुंडलिया, तोमर, बिअक्खरी, पादाकुलति आदि कतिपय छन्द और उनके भेदों पर कवि ने मौलिक चिन्तन प्रस्तुत किया है। चतुर्थ अध्याय में दूहा छन्द की 23 जातियों का विवेचन उनके लक्षण और उदाहरण देते हुए किया गया है। गाथा विवेचन में कुशललाभ ने यंत्र माध्यम से भी 28 प्रकार की गाथाओं का गुरु लघु अक्षरों और मात्रा योग की संख्या सहित वर्णन किया है—उसकी एक विशेषता यह भी है कि उसने कई एक गाथाओं का नामकरण भी पूर्व प्रचलित नामों के पर्याय के रूप में किया है।

छप्पय छन्द के लक्षण और भेदोपभेदों की भी यही स्थिति है। कुशललाभ ने काव्य और उल्लाला के योग से छप्पय की रचना बताते हुए, गुरु और लघु अक्षरों की संख्या के आधार पर 72 प्रकार के छप्पयों की नामावली प्रस्तुत की है।

पंचम प्रकाश में कुशललाभ ने काव्य शास्त्र में प्रयुक्त छन्द प्रस्तार विधि के अन्तर्गत छन्दों के भेदोपभेदों के ज्ञापक प्रत्ययों, प्रस्तार, नष्ट, उद्दिष्ट, एक-द्वयादिलग क्रिया, संख्या तथा अध्वयोग में से प्रथम चार का विवेचन प्रस्तुत किया है। इस प्रणाली को कुशललाभ ने 'सोडस करम लख्खण' (षोडशकर्म-लक्षण) संज्ञा दी है।

काव्य शास्त्रीय संस्कृत ग्रन्थों में उपर्युक्त प्रत्यय छः प्रकार के माने गये हैं, जबकि कुशललाभ ने संख्या, प्रस्तार, सूची, उद्दिष्ट, नष्ट, मेर, पताका और मरकटी संज्ञक आठ प्रकार के प्रत्यय दिये हैं। वार्णिक और मात्रिक दोनों रूपों में इनकी संख्या 16 हो जाती है। कुशललाभ द्वारा इसे 'सोडस करम लख्खण' नाम से बोधित करने का यही कारण है। उसने तुलनात्मक दृष्टि से इन सबका सोदाहरण विवेचन भी किया है। तथा पिंगल और भरत मुनि के मत उद्धृत करते हुए उनके परिप्रेक्ष में स्वयं की समीक्षा भी दी है। अनेक अन्य आचार्यों का

नामोल्लेख भी इस प्रसंग में कर दिया गया है। इसी सन्दर्भ में 'कुशललाभ' ने पाँच मात्राओं तक के पताका यन्त्र, सर्वतोभद्रयन्त्र, अस्टकल यन्त्र, मात्रका ध्वजा-यन्त्र भी उदाहरण के रूप में प्रस्तुत किये हैं—पर उनकी रचना की विधि का कहीं कोई उल्लेख तक नहीं किया गया है।

अलंकार

'पिंगल शिरोमणि' के छठे अध्याय में कुशललाभ ने अलंकारों का लक्षणों सहित सोदाहरण विवेचन प्रस्तुत किया है। अधिकांश अलंकार संस्कृत से ही ग्रहण किये गये हैं—फिर भी अपनी सूझबूझ से अलंकारों के भेदोपभेदों और नवीन अलंकारों की व्याख्या का समावेश कर कुशललाभ ने अपनी मौलिकता के प्रदर्शन की चेष्टा की है। ग्रन्थ में संगृहीत अलंकार निम्नांकित हैं—(1) काव्यलिंग, (2) हेतु, (3) काव्यपति, (4) विध, (5) समाधि, (6) प्रतिषेध, (7) कारकदीपक, (8) निरुक्ति, (9) समुच्चय, (10) अत्युक्ति, (11) परिसंख्या, (12) भाव, (13) परिव्रत, (14) स्वभाव, (15) परजायोक्ति, (16) वक्रोक्ति, (17) जथासंख्य, (18) लोकोक्ति, (19) सार, (20) जुक्त, (21) दीपकालंकार, (22) अन्योन्यालंकार, (23) अधिक, (24) चित्र, (25) सम, (26) विसम (विषम), (27) असंगति, (28) असम्भव, (29) विभावना, (30) विरोधाभास, (31) व्याज-निंदा, (32) विवक्षोक्ति, (33) गूढोक्ति, (34) व्याजोक्ति, (35) पिहित, (36) सूखम, (37) विसेस (विशेष), (38) उन्मीलित, (39) अगुण, (40) अतद्गुण, (41) पूर्व रूप, (42) रत्नावली, (43) मुद्रा, (44) लेखा आज्ञा, (45) अवग्या, (46) उल्लास, (47) विसाद (विषाद), (48) ललित, (49) सम्भावना, (50) स्लेस (श्लेष), (51) परिवार, (52) समासोक्ति, (53) विभवोक्ति, (54) सहोक्ति, (55) व्यतिरेक, (56) निदर्शना, (57) द्रष्टांत, (58) दीपक, (59) तुल्य योगिता (60) उल्लेख, (61) विरह, (62) जाति स्वभाव, (63) त्रिभावना, (64) विशेषालंकार, (65) उत्प्रेक्षा, (66) रूपक, (67) प्रतीप, (68) अनन्वय, (69) उपमा, (70) लुप्तोपमा, (71) अभूतोपमा, (72) अद्भुतोपमा, (73) दूसणोपमा, (74) भूषणोपमा, (75) दोसोपमा।

नामावली और लक्षणों के आधार पर ये शब्दालंकार और अर्थालंकारों में विभक्त किये जा सकते हैं। इसमें, अर्थालंकारों का ही बाहुल्य है—शब्दालंकार मात्र तीन—श्लेष, वक्रोक्ति और चित्र ही आये हैं।

काव्यशास्त्र में चित्रालंकार एक अनोखा प्रयोग है—जिसमें क्रमिक वर्ण-विन्यास के आधार पर किसी रूप या चित्र की योजना के द्वारा अर्थ का बोध कराया जाता है। वर्णों की इस विचित्रता को आचार्य रुद्रट ने चित्रालंकार की संज्ञा दी है।

पष्ट प्रकाश के उपरान्त कुशललाभ ने कामधेनका बन्ध, अस्वगत बंध, कपाटबंध, पट्दलकमलबंध, चरणगूढ चित्र बंध, गोमूत्रक चित्रबंध, चौकीबन्ध, भ्रदंगबंध, चक्रबंध, कमलबंध, अंकुसबंध शकटबंधादि चित्रबंध काव्यों का सचित्र वर्णन किया है। कवि ने कामधेनुका चित्रबंध की व्याख्या अपने शिष्य राजकुमार हररराज के साथ प्रश्नोत्तर शैली द्वारा की है और कवित्तछन्द के रूप में निरूपित कर उसकी रचना-विधि समझायी है। शिष्य के साथ गुरु की प्रश्नोत्तर शैली में निरूपण का कारण इस चित्रबन्ध की मूल उत्पत्ति को बताया गया है, जिसमें वृहस्पति और शुक्र (देव और दैत्य गुरुओं) के द्वारा इन्द्र को इसकी शिक्षा दी गई थी। गणना प्रस्तार भेद से इस चित्रबन्ध के 36 करोड़ प्रभेद बताये गये हैं तथा कठों (वर्णकोष्ठकों) के स्थापन की विधि भी स्पष्ट की गई है। अश्वगत (अश्वगति) के आधार पर निर्मित बंध की व्याख्या कुशललाभ ने चार चित्रों के माध्यम से की है। रूद्रट ने इस चित्रबन्ध काव्य का उल्लेख 'तुरंगम् पाठ' शीर्षक से किया है। कपाट-बंध में पदों के संयोजन से द्वारफलकों (किवाड़ों) के चित्र का निर्माण किया जाता है। कवि ने एक ही दोहे को अश्वगत, कपाट और त्रिपदी बंधों में बांध कर उनके चित्र प्रस्तुत किये हैं।

उक्त काव्य-गत चित्रबंधों के उपरान्त कुशललाभ ने नस्टोस्टक (नष्टोष्टक) रहित चित्रालंकारों तथा बहिर्लापिका, अन्तर्लापिका, गूढोत्तरा, अनेकोत्तरा, सासोत्तरा आदि छन्द मिश्रित चित्रालंकारों का उल्लेख प्रस्तुत किया है। नष्टोष्टक से तात्पर्य ओष्ठ्य-ध्वनि– प, फ, ब, भ विहीन उच्चारण वाले वर्णों के प्रयोग से है। इस चित्रालंकार को सरपगति (सर्पगति) बन्ध की संज्ञा भी दी गई है।

एक ही अक्षर के प्रयोग द्वारा समस्त रूपक को प्रस्तुत करने की दक्षता (क्रिया) को एकक्खरा (एकाक्षरा) कहा है। जिसमें 26 वर्णों या 35 मात्राओं तक के प्रयोग से चित्र बन सकते हैं। गीत, कवित्त, और दूहा के ही एकाक्षरी चित्र बनाये जा सकते हैं। इसे कवि ने वार्ताओं के माध्यम से समझाया है। अन्तर्लापिका से कवि का तात्पर्य ऐसे पदों से है जिनके उत्तर की प्रतीति श्रोता या पाठक को अपने अन्तस् या हृदय में हो। यदि पद के उत्तर में बाह्य उपादानों के सहयोग की अपेक्षा रहती है तो उसे बहिर्लापिका कहा गया है। गूढोत्तरा से तात्पर्य गुप्त-विधि से प्रच्छन्न उत्तर के गान से है। कुशललाभ ने इसके उदाहरण स्वरूप राजा हररराज के आमात्य फतैचन्द से संबंधित किसी गूढ घटना को प्रस्तुत किया है। इसी अस्पष्टता को 'गूढोत्तरा' संज्ञा दी गई है। एक ही शब्द जब अनेक भावों को व्यक्त करने की क्षमता रखता है तो उसे अनेकोत्तरा कहा गया है सासोत्तरा अलंकार में अन्यार्थ में सहस्रसः (अनेक) प्रश्नों तक का उत्तर एक ही शब्द द्वारा देने की सामर्थ्य होती है। कुशललाभ ने इस चित्र को साढ़े तीन सौ दूहों का प्रमाण दिया है। इनके अति त कतिपय ऐसे चित्रबन्ध काव्य हैं जिनसे सम्बन्धित

चित्र या यंत्र मात्र ही कुशललाभ ने दिये हैं—उनके लक्षण या पठन-विधि आदि का कोई विवेचन नहीं किया है। दो चित्र ऐसे भी हैं, जिनके नाम तक का निर्देश नहीं किया है।

अर्थालंकारों में सूखम (सूक्ष्म), पिहित, विरोधाभास, लेखा, अवग्या, अनुग्या, अद्भुतोपमा, दूसणोपमा, दोसोपमा, भूसणोपमा पर नवीन व्याख्यायें प्रस्तुत करते हुए कवि ने स्वयं के आचार्यत्व का का परिचय दिया है। 'आख्येय' अलंकार को उसने पारंपरिक 'विरोधाभास' अलंकार का ही भेद वताया है और दोनों में ऐक्य स्थापित किया है। इसी प्रकार लेखा, अनुग्या, और अवग्या को एक ही अलंकार के विभिन्न रूपों में स्वीकार किया है।

भरत के नाट्य शास्त्र के अतिरिक्त कुशललाभ से पूर्ववर्ती अन्य सभी ग्रन्थों में उपमा अलंकार के अनेक भेद मिलते हैं, पर प्रस्तुत ग्रन्थ में कवि ने किसी भी भेद के आधार को प्रस्तुत नहीं किया है। उपमा अलंकार के लुप्तोपमा, अद्-भुतोपमा, दूसणोपमा, भूसणोपमा, दोसोपमा आदि छह भेदों का विवेचन हुआ है पर कवि ने इन्हें उपमा के भेदों में परिगणित नहीं किया है। उक्त उपमाओं में मात्र अद्भुतोपमा का ही लक्षण अग्नि पुराण से मिलता है। यही सूखम और पिहित अलंकारों की स्थिति है। सूखम की व्याख्या में वह अर्थ को अन्तरंग रूप में ग्रहण करने का निर्देश देता है, बहिरंग रूप में नहीं। पिहित अलंकार में भी अर्थ पिहित (आछन्न) या अन्तर्निहित होता है।— यह गुप्त तथ्यों को प्रकट करता है। लक्षणों की दृष्टि से परम्परा पर आधारित होते हुए भी प्रस्तुतीकरण की शैली कवि की अपनी है। राजस्थानी रीति विवेचक ग्रन्थों में यह प्रथम प्रयास ही कहा जायेगा। उसके उपरान्त भी अनेक लक्षण-साहित्य-विषयक ग्रन्थों का सृजन हुआ पर व्यापक रूप में अलंकारों पर किसी में भी प्रकाश नहीं डाला गया है।

कुशललाभ ने 'पिंगल शिरोमणि' के प्रणयन में प्राचीन आचार्यों और समकालीन कवियों के ग्रन्थों से पूरी सहायता ली, यह विभिन्न अध्यायों में यथा-प्रसंग किये गये उल्लेखों से स्पष्ट है। ये आचार्य हैं—भरत, पिंगल, शौणिक, शुक शुक्राचार्य, वाल्मीकि, वृहस्पति, शिवशेखर, कालिदास, देवलभट्ट, भीम, गंगभट्ट, शंकर, कासीराम, माघ, चिरंजीव भट्टाचार्य, चन्दवरदाई, लल्ल भट्ट, हीरामणि, हमीर, दुरसा, केसव, भोज, और बारहठ सुदर्शन। पर ऐसा प्रतीत होता है कि सर्वाधिक सहायता कुशललाभ ने संस्कृत की परम्परा से ही ली है। कई एक छन्द और अलंकारों को तो उसने यथावत् ही ग्रहण कर लिया है।

अलंकारों के वर्णन हेतु एक ही पद्य में लक्षण और उदाहरण देने की पद्धति अपनाई गई है। पद्य के पूर्वार्द्ध में लक्षण तथा उत्तरार्द्ध में उदाहरण दिये गये हैं। संस्कृत-काव्य शास्त्रों में इसी शैली का आरम्भ जयदेव ने चन्द्रालोक में किया था। जयदेव से प्रभावित होकर ही अप्पय दीक्षित ने भी अपने अलंकार ग्रन्थ

'कुवलयानन्द' में इस शैली को अपनाया। कुशललाभ ने भी इसी पद्धति को अपनाया है।

शैली के अतिरिक्त अन्य अनेक अलंकारों के लक्षण और उदाहरण भी पिंगल शिरोमणि में वे ही हैं जो कुवलयानंद और चन्द्रालोक में प्रयुक्त हुए हैं। ऐसा प्रतीत होता है मानो कुशललाभ ने मात्र उनका भाषान्तर (अनुवाद) कर दिया हो। काव्यलिंग, परिसंख्या, विभावना आदि 75 प्रयुक्त अलंकारों में से अधिकांश अलंकार इसी प्रकार संस्कृत से राजस्थानी में अनूदित किये गये लगते हैं।

गीत प्रकरण

गीत शब्द की निष्पति 'गै' धातु में 'क्त' प्रत्यय के योग से की गयी है और उसका अर्थ कोशों में गाना, कहना, वर्णन करना या अनुवाचन करना मिलता है। राजस्थानी पिंगल शास्त्र में 'गीत' से तात्पर्य छन्द विशेष में विरचित ढालों का संकुल है, जिनका विशिष्ट नियमबद्ध उच्चारण के साथ अनुवाचन किया जाता है। चारण, मोतीसर, रावल या इनसे सम्बन्धित प्रशस्ति-गायक गीतों की रचना करने और उनका अनुवाचन करने में दक्ष रहे हैं। वे सरस, सुहृद, भावुकतापूर्ण और ओजयुक्त शैली में इन्हें पढ़ते हैं।

गीतों में तीन-चार या उससे अधिक पद्य होते हैं, जिन्हें ढाला संज्ञा दी गयी है। ढाला सामान्यतः चार चरणों का होता है। पर तीन और चार से अधिक चरणों में भी ढालों की रचना की जाती है। गीत के प्रारम्भिक ढाले के प्रथम चरण में अन्य चरणों की अपेक्षा अधिक वर्ण या मात्राएं होती हैं। पिंगल छन्दों की भांति ही डिंगल गीतों के भी मात्रिक या वार्णिक छन्द भेद होते हैं। उन्हीं के समान इन्हें भी सम, विषम या अर्द्ध सम में विभाजित किया गया है। इनमें भी प्रत्येक छन्द अपने गुण और लक्षणों आदि के आधार पर नाम धारण किये हुए और नियमों में बद्ध होता है। इनमें वार्णिक गीतों की अपेक्षा मात्रिक गीतों का बाहुल्य है और उनमें भी विषम गीतों का। गीत तुकान्त और अतुकान्त दोनों प्रकार के मिलते हैं। अतुकान्त गीतों की परम्परा अति प्राचीन कही गयी है।

कुशललाभ के अनुसार उसे गीत-प्रकरण को लिखने की प्रेरणा बादशाह अकबर के आश्रित सिंधु जाति के भट्ट आमिल और हामिल से मिली थी, जिन्होंने दो गीत प्रबन्धों की रचना की थी। इन बंधुओं ने अपने गीत प्रबन्धों में प्रयुक्त उक्तियां भी स्वयं ने ही रची थीं। कुशललाभ ने गीत प्रकरण में 40 प्रकार के गीतों पर विचार किया है। इनमें से पंखालो, लघु साणोर, विधानीक, घणकण्ठ आदि 17 गीतों के उदाहरण उसने समकालीन या पूर्ववर्ती रचनाओं से या गीत नायकों से सम्बन्धित प्रशस्ति गीतों से दिये हैं अवशिष्ट 23 गीतों के उदाहरण उसके स्वरचित हैं। गीतों के इन उदाहरणों में वीर शृंगार, भक्ति और शान्त रस

और अद्‌भुत रस की प्रधानता है।

पिंगल शिरोमणि में विवेचित गीतों को मात्रिक सम, मात्रिक अर्द्ध सम मात्रिक विसम, वार्णिक अर्द्धसम के रूप में व्यवस्थित किया जा सकता है। वार्णिक गीत, मात्र दो ही हैं—जिन्हें भी लक्षणों के माध्यम से अर्द्धवार्णिक कह सकते हैं। इन गीतों का नामकरण उनकी गति, पंक्ति (द्वालों), अलंकार, तुक, छन्द मेल आदि के आधार पर किया गया है।

गीतों के लक्षण पद्य शैली में स्पष्ट किये गये हैं। लक्षण के स्पष्टीकरण में संदेह की अनुभूति होने पर कवि ने गद्य का आश्रय ग्रहण कर लिया है। कतिपय गीत ऐसे भी मिलते हैं, जिनके उदाहरण वर्णित लक्षणों से मेल नहीं खाते। कतिपय गीतों में मात्रिक या वार्णिक श्रेणी का संकेत नहीं दिया गया है, पर सम-विषम प्रस्तार का प्रयोग अवश्य यत्र-तत्र किया गया है। कुछ गीत ऐसे भी हैं, जिनका नामोल्लेख व्याख्या सहित अनेक भेदों के लक्षणों सहित मिलता है। गीत-लक्षणों की भाषा, प्रायः सांकेतिक है। कुछ गीतों को छन्दों के समान मानकर भी उनमें शंका प्रस्तुत करते हुए प्रश्नोत्तर द्वारा उनका समाधान प्रस्तुत किया गया है।

उडिंगल नाममाला

कुशललाभ कृत 'उडिंगल नाममाला' को राजस्थानी भाषा का प्राचीनतम नाम-संज्ञक कोष या पर्याय कोष कहा जा सकता है। इसमें राजा, मंत्री, जोधा, हाथी, घोड़ा, रथ, व्रखभ (वृषभ) तरवार, कटार, फर्री, बरछी, तीर, धरती, आकाश, पाताल, अपसरा, किन्नर, समुद्र, पर्वत, ब्रह्मा, विष्णु, शिव, देवादिक के एकाधिक पर्याय नाम अंकित किये गये हैं, जिनकी कुल सं० 389 है।

इनमें कतिपय संस्कृत तत्सम, कुछेक तद्‌भव, देशज और कुछ पद विपर्यय प्रणाली द्वारा निर्मित शब्द हैं। कहीं-कहीं विदेशी भाषा के शब्दों को भी पर्याय रूप में ग्रहण करके कोष में प्रतिष्ठित किया गया है—तो कहीं संस्कृत या संस्कृत से उद्‌भूत शब्दों के साथ विदेशी भाषाओं के शब्द-युग्म निर्मित किये गये हैं। पद विपर्यय प्रणाली द्वारा निर्मित शब्दावली में गात्र शैल (शैलगात्र), वाहण शंभु (शंभुवाहण), मुख-काल (कालमुख); चरणचतु (चतुच्चरण), गन्ध-मद (मद गंध), तथा विदेशी शब्दों के सहयोग से निर्मित शब्द युग्मों में फ़ौज आवरण, फ़ौज गाहण, आदि शब्द उदाहरण-स्वरूप प्रस्तुत किये जा सकते हैं। कवि ने पर्याय नाम संकलन में अपनी व्युत्पत्तिमूलक सूझ-बूझ का पर्याप्त परिचय दिया है। इसे एकार्थवाची श्रेणी के कोण की संज्ञा दी जा सकती है। इसमें प्राप्त समानार्थी शब्दों में एक ही अर्थ और पदार्थवाची शब्दों का उल्लेख हुआ है।

5
साहित्यिक अध्ययन

कला पक्ष भाषा और शैली

कुशललाभ की काव्य-कृतियों में ढोला मारवणी री चौपई और 'माधवानल काम-कंदला चौपई' सर्वप्रथम ज्ञात रचनाएं रही हैं। 'ढोला मारवणी री चौपई' में चौपइयों को छोड़कर, जो उसकी स्वयं की कृति कही जा सकती है, दोहा समन्वित शेष भाग अपभ्रंश-कालीन प्राचीन प्रबंधों से या लोक प्रचलित पारम्परिक लोकाख्यान से ग्रहण किया गया प्रतीत होता है। कुशललाभ ने स्वयं इस बात का संकेत 'ढोला-मारवणी री चौपई' के प्रारम्भ में ही 'दोहा घणा पुराणा अछइ, चौपई बंध कीधा में पछइ' लिखकर दिया है। ऐसी स्थिति में दोहों की भाषा कुशललाभ के काल से बहुत पूर्व की निश्चित होती है।

'ढोला मारू रा दोहा' ग्रन्थ का संपादन करने वाले संपादक त्रय ने इन दोहों की भाषा को 'माध्यमिक राजस्थानी' कहा है। डा. मोतीलाल मेनारिया ने इसे डिंगल भाषा माना है। पं. गौरीशंकर हीराचन्द ओझा ने इसे तत्कालीन बोल-चाल की राजस्थानी और डा. शालोंत वादविल ने प्राचीन मारवाड़ी गुजराती की संज्ञा दी है।

कुशललाभ का अपभ्रंश साहित्य का अध्ययन अत्यन्त सूक्ष्म और व्यापक था, यह उनके द्वारा विरचित अधिकांश काव्यों की प्राचीन परम्परा से और 'ढोला मारवणी चौपई' में दूहों से सम्बन्धित उक्त कथन से ही स्पष्ट है। अतः यह स्वाभाविक है कि उनकी रचनाओं पर परम्परागत पांडित्य की छाप अवश्य ही रही होगी। 'माधवानल काम कंदला चौपई' में भी ऐसे अनेक दोहे संकलित हैं, जिन्हें कुशललाभ ने 'ढोला मारू रा दूहा' के प्राचीन संस्करण या उसीके समान किन्हीं प्राचीन संदेश काव्यों से यथावत उद्धृत किया होगा। इस प्रकार के दोहे और गाथाएं अन्य प्रेमकथानकों के प्राचीन रूपों और अपभ्रंश कालीन संदेश काव्यों में भी खोजी जा सकती हैं। यह सम्भव है कि इस रचना में भी अपनी भाषा को अपने काल से प्राचीन दिखाने का उनका उद्देश्य रहा हो और इसीसे उसने इस प्रकार के दोहों को यथावत उद्धृत किया हो।

ढोला मारू री चौपई में विरचित चौपइयों में भी दोहों के अनुरूप भाषा के

निर्वाह का प्रयत्न किया गया है, लेकिन अन्तर स्पष्ट हो जाता है। इनकी भाषा को सरलीकरण की ओर अग्रसर हुई डिंगल का ही रूप कहा जा सकता है। पिंगल शिरोमणि, महामाई दुर्गा सातसी, जगदम्बा छन्द या भवानी छन्द में विशुद्ध डिंगल भाषा का प्रयोग स्पष्ट दिखाई देता है। अन्य ग्रंथों में तदयुगीन बोलचाल की भाषा का प्रयोग किया गया है, जिसका प्रयोग धर्म प्रचार हेतु प्रायः सभी जैन संत करते आये हैं। यहाँ कुशललाभ के ग्रंथों में मिलने वाली अन्य भाषागत विशेषताओं का विवेचन किया जा रहा है—

1. अइ, और अउ के प्राचीन प्रयोग
2. 'ण' और 'ल' ध्वनियाँ
3. मधुरता के लिए शब्दान्त में 'डा' या 'डी' प्रत्यय का प्रयोग
4. स, त, ज, क आदि निपातों का प्रयोग
5. पादपूर्त्यर्थ अन्त में ह ज, य, र, का प्रयोग
6. क्रियाओं का अनुनासिकीकरण—यथा भरंति, सहंति, आदि
7. शब्दों में द्वित्तवर्णात्मक प्रयोग यथा तुल्लउ, तुज्झ, मज्झ
8. श और ष के स्थान पर स का प्रयोग
9. मूर्धन्य 'ळ' ध्वनि के संकेत का अभाव
10. ख के स्थान पर मूर्धन्य 'ष' चिह्न का प्रयोग जिसकी ध्वनि 'ख' ही होती थी
11. भूतकालिक बहुवचनात्मक क्रिया शब्दों पर अनुनासिक्य बिन्दु का प्रयोग

कुशललाभ की भाषा में इस प्रकार हम जहाँ पुरानी भाषा के रूप की झलक देखते हैं, वहीं अपने काल के विकसित नवीन रूप की भी।

अपनी परिव्राजक प्रवृत्ति के कारण अर्जित ज्ञान और तद्युगीन परिनिष्ठित भाषा-युक्त साहित्यिक परम्परा के अनुसार उसके साहित्य में पास-पड़ोस की गुजराती, सिंधी, पंजाबी, मालवी भाषाओं की शब्दावली ने भी प्रवेश पा लिया है। उसमें कहीं मारवाड़ी, मेवाड़ी, तो कहीं माडी, मालवी या ढूंढाड़ी के शब्द रूप भी काव्य की शोभा बढ़ाते नजर आते हैं। शब्दावली में तद्भव और देशज शब्द-सम्पदा का बाहुल्य है—इनकी तुलना में तत्सम शब्दावली अत्यल्प है। अरबी, फारसी आदि विदेशी भाषाओं के शब्द भी इन काव्यों में दिखाई दे जाते हैं, पर वे गिनती के ही हैं। कुशललाभ के काव्यों की विषयवस्तु सनातन है, अतः ऐसे साहित्य के लिए परम्परागत साहित्य का शब्द-भंडार ही पर्याप्त था।

देशज शब्द-बाहुल्य और पार्श्ववर्ती बोलियों के नाना रूप शब्दों के मणिकांचन संयोग ने इन काव्यों की भाषा में विशेष माधुर्य और मार्दव की सृष्टि कर दी है। देशज शब्दों के कतिपय नमूने हैं—सांढियाँ, ओलग, परिघल, खांत, झाझी, रीठ, थोबड़, डीभू, सरढी, मांगणहार, वाहला, घाल्यउ, अमूझइ, नाठउ, अक्खर, आउध, आरिसो, आंतरों, उचाळो, गवाखि, जगीस, झाळ, नाह, दुकाल, परणी-

पूठई, पूतली, मावीत्र, भाणेजा, वीज वैरागण, वाजीत्र, सोहामणी, सिरहर, सूडा आदि।

पार्श्ववर्ती इतर प्रान्तीय भाषा-शब्दावली के नमूने चाहंदी, चंगा, लज्ज, अज्ज, सैं, रत्ता, तोनूं, कित्थे, (पंजाबी), ऐम, जेम, केम, तेडऊ, मोकळइ, नूं, घरना, थई, मूकी गयुं, एनलू, माणस, पामी, जूवा (गुजराती), पठावइ, जिम, तिम, इम, आए, सुहाए, चलाए, (व्रज)।

सम्पूर्ण काव्य-ग्रन्थों में गिनती के जो विदेशी शब्द मिलते हैं, वे हैं—दरबार साहिब, सलाम, कागल, दाम, अरदास, मुसताक, वगसो, फतह, नजर, खवास, कमाण, फौज, दांम, दीनार, फदिआ, जुदा, नफर, खुरसांण, जीन, निसांण, हलाल, महल, फुरमांण, हकीकत आदि। पर्याय और अनुरणात्मक शब्दावली की भी प्रचुरता उनके काव्य में देखने को मिलती है, जिन्होंने काव्य-सौंदर्य में वृद्धि तो की ही है—साथ ही, जो कुशललाभ के भाषाज्ञान का द्योतक भी है।

पर्याय शब्द—राय, राइ, राव, राऊ, राजा, नरपति, भूपति, नृपति, धणियां स्वामी, नाह, वल्लहा, वल्लह, वालभ, प्रिय, प्रियतम, प्रीतम, प्रीउ, प्यारा, सयणां, सज्जन, साजण, सायण, प्राणप्रिय, प्राण अधार, कंत, भरतार आदि।

कतिपय शब्द ऐसे भी हैं, जिनकी पुनरावृत्ति शब्द के अर्थ को विशेष प्रभावशाली बनाने की दृष्टि से की गयी है—यथा—लस्ट-पुस्ट, मांगीतांगी, तरल सरल, अरथगरथ, जरा-जुफत, दाम दलेल, सांणदांण, खलभल, डब डब, बळवळती—

अनुरणात्मक शब्दावली—खड़हड़, धड़हड़ी, गड़ड़ई, कड़डंति, बड़क्कई, झलहलइ, गहगहइ, महमहइ, विलविलइ।

पहले बताया जा चुका है कि कुशललाभ के साहित्य की भाषा मध्यकालीन साहित्यिक राजस्थानी और लोकभाषा का मिश्र रूप है और पिंगल शिरोमणि आदि में डिंगल का विशुद्ध रूप। ढोला मारवणी चौपई और माधवानल कामकंदलादि काव्य अपभ्रंश की परम्परा के काव्यग्रन्थ हैं— अतः इनमें अपभ्रंश की छाया का होना स्वाभाविक है। अन्य काव्यों में जैन संतों की परम्परानुसार बोलचाल की राजस्थानी भाषा के दर्शन होते हैं। अपभ्रंश के कतिपय शब्द नीचे दिये जा रहे हैं, जिनका कुशललाभ के काव्यों में प्रयोग हुआ है।

भग्गाण, न्यांण, णाटक, पज्ज, कज्ज, धज्ज, पठिज्ज, कज्जळ, अट्ठ, उजट्ट, थट्टां, मन्न, मयण, मुद्ध, लुद्धी, सिद्धां, दीध्धा, जुद्ध, हवद्ध, हत्थ, कत्थ आदि।

कुशललाभ ने यत्र-तत्र संस्कृत भाषा के पांडित्य और विविध विद्याओं के अध्ययन से प्राप्त शब्द-संयोजन द्वारा अपने साहित्य को सारगर्भित बना दिया है। कई स्थल ऐसे हैं, जहां उन्होंने संस्कृत के पूरे के पूरे प्राचीन सुभाषित श्लोक ही दे दिये हैं, जो उनके संस्कृत ज्ञान के साक्षी बन सकते हैं। माधवानल कामकंदला चौपई में ही ये विशेष रूप से प्रयुक्त हुए हैं।

प्रियां स्मृत्वा सद्यः स्फुटित हृदयो मन्मथ वशात्।
अहा ! हा हा ! हा हा ! हरिः हरि मृतःकोऽपि पथिकः ।।
(मा० का० चौ० 573)

विद्वत्वं च नृपत्वं च, नैव तुल्यं कदाचन।
स्वदेशे पूज्यते राजा, विद्वान् सर्वत्र पूज्यते ।। (मा० का० चौ० 191)
आज्ञा भङ्गेन नरेन्द्राणां महतां मानमर्दनं।
पृथक् शय्या च नारीणां शस्त्रवध उच्यते ।। (मा० का० चौ० 19)

भाषा के सौष्टव में लोक प्रचलित कहावतों-मुहावरों का यथोचित प्रयोग सदैव वांछित रहता है। कुशललाभ की भाषा प्रमुख रूप से लोक-व्यवहार की भाषा ही है—अतः उसमें लोकप्रचलित कहावतों-मुहावरों का स्वतः आ जाना स्वाभाविक है। इनसे काव्य में प्रसाद गुण की वृद्धि हुई है, जिसने काव्य को सहज बोधगम्य बना दिया है और साथ ही रस परिपाक में सहयोग दिया है। आलोच्य काव्यों में प्रयुक्त मुहावरों से युक्त कतिपय उदाहरण प्रस्तुत हैं।

(1) गम गोचर मन माहे न राखि (ढो० मा० चौ० 28)
(2) थें सिधावउ सिध करउ (मा० का०)
(3) लूण हराम करे सुहिव (ढो० मा० चौ० 114)
(4) जब थी हम तुम्ह बीछड्या, तब थीनींद हराम (मा० का० चौ० 443)
(5) हूया राम राज्ये जीतीवी सद्धही (म० दु० सा०)

इसी प्रकार हँसी उड़ाना, थाह खोजना, बाट जोहना, दिन गिनना, जले पर नमक छिड़कना, आँख न लगना, हवा होना, कलेजा फटना, घात खेलना, हाथ मलना, दूध का मेह वरसना, जैसे अनेक मुहावरे काव्य में प्रयुक्त हुए मिलते हैं।

कहावतों के उदाहरण

"रोवणछेह विल्लग्गिइ, अवसि अमंगल होइ।"
"नींद तु नावइ त्रिहुं जणां, कहु कामिणि किहां"
"घण सनेहा, बहु रणां, वयर खटुक्कइ जिहां ।।399।।
"वेलि विछोह्या पानड़ा दिन दिन पीळा होइ"
"नारी नरवइ तंतजल, सर पत्थर केकाण,
"अै सातेइ आँधळा, फेरणहार सुजाण" ।। 521।।

शब्द शक्तियाँ

कुशललाभ ने अपनी कृतियों में अभिधा, लक्षण और व्यंजना—तीनों शब्द शक्तियों का यथोचित प्रयोग किया है। अभिधात्मक उक्तियों का ही उनमें प्राचुर्य है— पर लक्षणा और व्यंजना के प्रयोग भी विरल नहीं हैं। इनके प्रयोग से भाषा में ओज,

माधुर्य और प्रसाद जैसे गुणों की अभिवृद्धि हुई है। नीचे लक्षणा और व्यंजना शब्द शक्तियों के प्रयुक्त उदाहरण दिये जा रहे हैं—

लक्षणा

हीयड़ा भीतरि पइसि करि, उग्गा सल्लिर रूंख।
नित सल्लइ नित पल्लवइ, निच्च निवल्ला दुक्ख॥
(मा० का० कं० 346)

व्यंजना

न मए रून्नं विहीयं, अमंगलं, होइ तुम सब सिद्धि।
विरहि धूम-कुविया, गलंती ए मुज्झ नयणाइं॥
(मा० का० कं० 364)

गुण

कुशललाभ के समग्र काव्य में प्रसाद गुण का प्रामुख्य है। कष्ट-कल्पना का आश्रय पांडित्य प्रदर्शन की भावना या अस्पष्टता की भावना के दर्शन कहीं नहीं होते। तद्युगीन भाषा और भाव-भंगिमा को समझने वाला कोई भी सुधी पाठक उनके काव्य में रस ले सकता है।

सखी ए! आमण दूमणी, मारगि ऊभी कांइ।
जेऊ जीवन वल्लहा, तेउ चलिया जाइ॥ (मा० का० कं० 347)

माधुर्य-गुण-युक्त वर्णन में ट ठ ड ढ परुष वर्णों के अतिरिक्त 'क' से 'म' पर्यन्त स्पर्श वर्णों, ह्रस्वस्वरों, अल्पसामासिक पदों तथा अनुनासिक ध्वनियों की व्यवस्था रहती है। कुशललाभ के संदेश काव्य ग्रन्थों के प्रसंग में यह गुण दर्शनीय है—

कंता मइं तू बाहरी, नयण गमाया रोइ।
हत्थाली छाला पड्यां, नीर निचोइ निचोइ॥ (मा० का० कं० 437)

शृंगार रस के वर्णनों में वैसे भी माधुर्य गुण का मिलना स्वाभाविक ही है।

शैली

कुशललाभ के साहित्य में हमें राजस्थानी साहित्य की परम्परा के अनुसार चारणी, जैन और लौकिक तीनों ही प्रकार की शैलियों के दर्शन हो जाते हैं—पर जैन और लौकिक शैली का ही इनमें प्राचुर्य है। इन परम्पराओं का पालन करते हुए कुशललाभ ने जहां सरल शैली का आश्रय ग्रहण किया है, वहीं अलंकृत और गूढ़ शैली-प्रयोग की भी कमी नहीं है। कथन की दृष्टि से उत्तम, मध्यम और अन्य पुरुष,

तीनों ही शैलियों का प्रयोग करते हुए भी प्रधानता अन्य-पुरुष-शैली की दिखाई देती है। कवि के साहित्य में इसी कारण वर्णनात्मकता का आधिक्य है। रीति के आधार पर कुशललाभ ने वैदर्भी, गौड़ी और पांचाली तीनों ही शैलियों का प्रयोग किया है।

कुशललाभ ने लोक शैली को अपनाते हुए अपने कथा-काव्यों में लोक मानस की यथार्थ झाँकी को प्रस्तुत किया है और उस युग की वाणी को मुखरित किया है। लोक-जीवन की सहज स्वाभाविक भावनाएँ उसने प्रेमी युगल के माध्यम से प्रकट की हैं। एक आचार्य की अपेक्षा वह जन कवि ही अधिक है। उसने लोक में प्रचलित अनेक प्ररूढ़ियों का लौकिकता के संस्पर्श के साथ अपनी रचनाओं में प्रयोग किया है। ये प्ररूढ़ियाँ हैं, स्वप्न प्ररूढ़ि, शुक प्ररूढ़ि, और योगी-योगिनी प्रादुर्भाव प्ररूढ़ि आदि।

माधवानल कामकंदला चौपई, ढोला मारवणी चौपई, और भीमसेन हंसराज चौपई में वह संदेश रासक के समान संदेश प्रेषण शैली को ग्रहण करता दिखाई देता है। इन प्रेम-कथाओं का श्रेष्ठ अंश भी इनमें निहित प्रेमी युगलों के विरह वर्णन और उनमें संदेशों के पारस्परिक आदान-प्रदान के प्रसंगों को ही कहा जा सकता है। माधवानल काम कंदला चौपई में विरह विदग्ध माधव के द्वारा बटाऊ के माध्यम से कंदला के पास पत्र-प्रेषण और कंदला का पत्रोत्तर, ढोला-मारवणी चौपई में प्रिय वियोग में क्रौंच पक्षियों के माध्यम से मारवणी द्वारा ढोला को अपनी विरह-वेदना से समन्वित संदेश-प्रेषण का प्रयास, मालवणी के द्वारा पूंगल के लिए प्रस्थान कर गए ढोला को मनाकर लौटा लाने हेतु शुक के द्वारा संदेश-प्रेषण और 'भीमसेन हंसराज चौपई' में मदन मंजरी के द्वारा शुक के माध्यम से भीमसेन के पास प्रणय प्रस्ताव के प्रेषण का प्रयास इसी शैली के अन्तर्गत परिगणित किए जा सकते हैं।

'माधवानल काम कंदला चौपई' और 'स्थूलिभद्र छत्तीसी' में कुशललाभ ने प्रेम की सात्विकता और प्रगाढ़ता के निरूपणार्थ दृष्टान्त शैली का आश्रय ग्रहण किया है, तो स्वकथन की पुष्टि स्वरूप 'ढोला मारवणी चौपई' और 'माधवानल काम-कंदला चौपई' में सूक्ति-पद शैली को अपनाते हुए पुरातन प्राकृत-गाथाओं का आश्रय लिया है।

कुशललाभ ने अनुभूति की सबल अभिव्यक्ति के लिए संवाद शैली को ग्रहण किया है। प्रायः समग्र प्रेमाख्यान काव्य संवादमय बन गये हैं। इससे रसिक लोगों के लिए ये ग्रन्थ रुचिकर हो गये हैं। माधवानल एवं काम कंदला और ढोला और मारवणी के पारस्परिक प्रेमालाप, प्रश्न-पहेलियों और अन्य लघु-प्रसंगों में भी संवाद बड़े सहज और चुटीले हैं। ऐसे ही प्रसंगों का संयोजन कर कुशललाभ ने 'माधवानल काम कंदला चौपई' में इन्द्र और अप्सरा जयन्ति, काम कंदला और

उसकी माता, 'ढोला मारवणी चौपई' में राजा पिंगल और ख़वास, उमा और सावन्तसिंह, ढोला और मालवणी, मारवणी और उसकी सखियाँ, ढोला और ऊँट, योगी और ढोला, 'तेजसार रास' में तेजसार और योगी, तेजसार और राक्षस तेजसार और व्यंतरी, तेजसार और उसकी माता के मध्य संवाद, 'स्थूलिभद्र छत्तीसी' में स्थूलिभद्र और कोशा का संवाद, 'भीमसेन हंसराज चौपई' में योगी और मदन मंजरी तथा भीमसेन, हंस और हंसिनी, 'महामाई दुर्गा सातसी' में देवी और महिषासुर संवाद, देवी और देवताओं के मध्य संवाद, शुंभ और सुग्रीव, सुग्रीव और देवी, चण्ड मुण्ड और देवी और रक्त बीज, तथा 'जिनपालित जिनरक्षित रास' में जिनपालित, जिनरक्षित और सेलग तथा देवी के मध्य संवादों की सृष्टि कर कथा-प्रवाह में आकर्षण पैदा किया है।

कुशललाभ ने 'ढोला मारवणी चौपई', 'माधवानल काम कंदला चौपई' और 'स्थूलिभद्र चौपई' में उपालम्भ शैली का उपयोग किया है। काव्यों में यह शैली प्रायः प्रिय के प्रेम-शैथिल्य की अवस्था में प्रेमियों द्वारा प्रेम की सुधि दिलाने हेतु अपनाई गई है।

काव्यों में प्रयुक्त छन्द

कुशललाभ साहित्य-शास्त्र के पंडित थे। संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश; डिंगल, पिंगल, और कतिमय लोक भाषाओं पर उनका समान अधिकार था। भाषा और साहित्य के आचार्यों के सान्निध्य में रहकर उन्होंने विविध प्रकार की विद्याओं का अध्ययन किया था। इन्हीं विद्याओं में छन्दशास्त्र भी एक है, जिसके वह सुविज्ञ पंडित थे। उनके छन्द शास्त्र के ज्ञान का परिचायक ग्रंथ 'पिंगल शिरोमणि' है, जिसमें उन्होंने पिंगल और डिंगल के छन्दों का विशद निरूपण किया है, जिसका परिचय पहले दिया जा चुका है। इससे यह भी ज्ञात होता है कि उन्होंने अपने पूर्ववर्ती आचार्यों के छन्द-ग्रंथों का भी सम्यक् अवलोकन किया था।

कुशललाभ ने अपने समग्र साहित्य में जिन छन्दों का प्रयोग किया है, वे इस प्रकार हैं—

'माधवानल कामकंदला चौपई' में कुशललाभ ने वस्तु, चौपई, गाहा, श्लोक (अनुष्टुप), दूहा, सोरठा, मालिनी, शार्दूल विक्रीडित, कवित्त, पाधड़ी तथा शिखरणी छन्दों का प्रयोग किया है, पर सर्वाधिक प्रयोग दूहा और चौपई का ही हुआ है। शेष छन्द नाम मात्र के हैं।

'ढोला मारवणी चौपई', 'तेजसार रास चौपई', 'भीमसेन हंसराज चौपई' आदि प्रेमाख्यानक या चरिताख्यानक रचनाओं में दूहा, चौपई, काव्य, वस्तु, सोरठा, गाथा आदि का और 'दुर्गा सातसी' जैसी स्तुतिपरक रचनाओं में छप्पय, कवित्त, हणुफाल, नाराच, अर्द्धनाराच, भुजंगी, मोतीदास, पाधड़ी, गाथा,

त्रोटक, रेमक(रोमक), लीलावती, विअक्खरी, आर्या आदि के साथ साथ सावझड़ा और दूहा सावझड़ा जैसे छन्द प्रयुक्त हुए हैं। नवकार छन्द, जगदम्बा छन्द, या भवानी छन्द तथा गोड़ी पार्श्वनाथ छन्द में कवि ने दूहा, चौपई और हाटकी छंदों का उपयोग किया है। मालिनी, शिखरणी, शार्दूल विक्रीडित, गाथा, आर्या और अनुष्टुप जैसे छंद संस्कृत की परम्परा के तथा गाहा, दूहा, सोरठा, वस्तु, पाधड़ी, चउपई जैसे छन्द प्राकृतिक और अपभ्रंश की परम्परा से ग्रहण किये गये हैं।

इससे स्पष्ट है कि संस्कृत का पांडित्य दिखाने के लिए कुशललाभ ने शास्त्रीय छन्दों की रचना अवश्य की है, पर अधिकांश वर्णन मागध छन्दों में हैं जो आभीर संस्कृति की विशेष देन रही है। सोरठों और दूहों की छटाएँ, अपने पूरे प्रकाश से देदीप्यमान दीखती हैं। इनका श्रेय कहाँ तक कुशललाभ को दिया जा सकता है, यह शोध का विषय है। हाँ, वर्णनात्मक अंशों में चौपई छन्द की रचना उनकी अपनी है, जो तत्कालीन वर्णन एवं चरित्र ग्रंथों की शैली है। इसमें कोई विशेषता नहीं है।

कुशललाभ द्वारा प्रयुक्त कतिपय छन्दों के लक्षण नीचे दिये जा रहे हैं।

गाहा प्राकृत काल का अति प्राचीन छन्द है। संस्कृत में इसे गाथा या आर्या नाम दिया गया है। 'प्राकृत पैंगलम्' में गाहा को सत्तावन मात्रा का छन्द कहा गया है, जिसके प्रथम चरण में 12, दूसरे में 18, तीसरे में 12, और चौथे में 15 मात्राएँ होती हैं। इसके सत्ताईस भेद माने गये हैं। 'माधवानल कामकंदला चौपई' में कवि ने प्राकृत और अपभ्रंशकाल में प्रचलित गाथाओं का यथावत गुंफन किया है, पर अन्य रचनाओं में उसने स्वरचित गाथाओं को भी स्थान दिया है।

'चौपई' छन्द की प्रमुखता उत्तर अपभ्रंश काल में हुई थी, पर इससे पूर्व भी सरहपा आदि बौद्ध कवियों ने 'चौपई' का प्रयोग किया था। पद्धति और छप्पय छन्द भी इसी प्रकार अपभ्रंश काल से प्रयुक्त होते आये हैं। पद्धडी या पज्झटिका अपभ्रंश काल का मुख्य छन्द रहा है। 'प्राकृत-पैंगलम्' के अनुसार इसके प्रत्येक चरण में चार चतुर्मात्रिक गणों की रचना की जाती है, जिनमें अन्तिम चतुष्कल 'पयोधर' (जगण) (होना आवश्यक है)। 'स्वयंभू छन्दस्' (6-160) में इसकी व्याख्या इस प्रकार की गयी है– 'सोलह मत्तं पाआउलअं (छ च छ) सविरइअं संकलुअं। (तं चे अ) चआर चउक्कं, तं जाणसु पद्धडिया धुवअं।

छप्पय छन्द भी अपभ्रंश काल का ही छन्द है। 'प्राकृत-पैंगलम्' में इसे रोला और उल्लाला के योग से बना छन्द कहा गया है। रोला छन्द की गण-व्यवस्था (11) बताई गई है। इसके प्रत्येक चरण पर 11-13 पर यति होती है। उल्लाला के दो चरण 28, 28 मात्राओं के होते हैं और प्रत्येक चरण में 15-13 पर यति होती है। हेमचन्द्र ने इसे मागध कवियों (भट्टों) का प्रिय छन्द कहा है, जिसमें ये प्रशस्ति-गान करते थे। वीर-काव्य के रचनाकारों का भी यह

अतिप्रिय छन्द रहा है।

वस्तु छन्द भी अपभ्रंश का ही है। इसे वत्थु ही माना जाये तो इसके चार पद पट्पदी के प्रथम चार पदों के अनुरूप 24, 24 मात्राओं के होते हैं। इसी के अन्य नाम कव्व[1] रड्डा[2] भी मिलते हैं। जैन साहित्य में इसका प्रचुर प्रयोग हुआ है। भरतेश्वर बाहुबली रास में मात्रादि के इन्हीं लक्षणों से युक्त प्रयुक्त छन्द को रड्डा कहा गया है। हेमचन्द्र ने भी रड्डा को स्पष्टतः वस्तु कहा है (छन्दोनुशासन 5/23)। कुशललाभ द्वारा प्रयुक्त वस्तु छन्द के प्रथम चरण में 10,13, द्वितीय में 10, 10, 8 तृतीय में 10, 17 चतुर्थ में 13, 11 और पाँचवीं में 13, 11 मात्राएँ दी गयी हैं। रड्डा के अनेक भेद हैं। तालंकिनी नामक एक भेद में दूसरे और तीसरे चरणों में 28, 28 मात्राएँ हैं, प्रथम में 16+7=23। एक अन्य भेद चारुनेत्री में 28-28 के द्वितीय चरण और प्रथम चरण में 15+7= 22 मात्राएँ बैठती हैं। संभवतः वस्तु के लिए यही भेद व्यवहृत हुआ है। कुशललाभ के द्वारा प्रयुक्त वस्तु छन्द के यह बहुत निकट है।

मालिनी छन्द का एक अन्य नाम मंजु-मालिनी भी मिलता है। यह एक गणवृत्त है। इसके प्रत्येक चरण में न न म य य गणानुसार 7, 8 अक्षर तथा 22 मात्राएँ होती हैं (छन्द प्रभाकर पृ० 190) और शिखरणी छन्द में य म न स भ ल ग गणानुसार चरण के प्रथमार्थ में 6 और उत्तरार्ध में 11 अक्षर होते हैं (छं० प्र० पृ० 181)।

श्लोक (अनुष्टुप) के चारों पदों में पाँचवाँ वर्ण लघु और छठा वर्ण दीर्घ हो और समपदों में सातवाँ वर्ण भी लघु हो, इसके अतिरिक्त अन्य वर्णों के लिए कोई नियम न हो, उसे श्लोक कहते हैं (छन्द प्रभाकर, पृ० 130)।

दूहा—दोहा के विषम चरणों में 13 और सम चरणों में 11 मात्राएँ होती हैं। मात्रा, वर्ण, चरण, ढाल, विषय वर्णन आदि की दृष्टि से अनेक भेदों का प्रयोग कुशललाभ के साहित्य में हुआ है।

सारसी—छन्द में 27 मात्राएँ होती हैं, जिनमें 16,11 पर यति और अन्त में गुरु होता है।

त्रिभंगी - इसके प्रत्येक पाद में 32 मात्राएँ होती हैं। जिनमें 10,8,8,6 पर यति, और अन्त में गुरु वर्ण होता है।

त्रोटक - के प्रत्येक चरण में चार सगण (IIS) होते हैं। कवि ने इसका प्रयोग करते समय गणों के गणना निर्वाह के नियमों की चिन्ता नहीं की है।

सोरठा—यह दोहे से एकदम उल्टा छन्द है। इसके विषम चरणों में 11

---

1. संदेश रासक, भूमिका, डॉ. विश्वनाथ प्रसाद त्रिपाठी, पृ० 105
2. आदिकाल के अज्ञात हिन्दी रास काव्य, डा हरिशंकर 'हरीश' पृ० 35

और सम चरणों में 13 मात्राएँ होती हैं, तथा प्रथम और तीसरे चरण की तुक मिलती है।

संगीतात्मकता

विविध प्रकार के छन्दों में रचना करते हुए कवि ने जहाँ अपने काव्यों को शास्त्रीय तथा साहित्यिक रूप दिया है, वहीं जनरुचि के अनुरूप बनाने और अपने धर्म-प्रचार की दृष्टि से तत्कालीन प्रचलित लौकिक और शास्त्रीय संगीतात्मक बंधों को भी अपनाया है। इसके लिए उसने संगीत शास्त्रीय रागों और ढालों का आश्रय लिया है। इनके प्रयोग से काव्य ने गेय रूप ग्रहण कर लिया है। रागों में आसावरी, रामगिरी, गौडमलहार, श्री खंभायती, सोरठी, सामेरी, केदार, गौड़ी, गूड-गौडी, गुडी-गुजराती, धन्यासिरी तथा हुसैनी प्रयुक्त मिलती हैं, तो ढालों में वेली नी ढाल, मृंगाक लेखानी ढाल, रहुनी ढाल, गीता छन्दा नी ढाल, जतीनी ढाल, डूंगर दानी नी ढाल, इकवीसनी ढाल, संधिनी ढाल, वाहली ढाल, सिंध नी ढाल, सामेरी ढाल और उल्लाला ढाल में रचना की गयी है। इनसे यह निष्कर्ष निकलता है कि कुशललाभ संगीतशास्त्र का ज्ञाता होने के साथ ही प्राचीन जैन परम्परा का एक दक्ष धर्म-प्रचारक भी था। भीमसेन हंसराज चौपई, पूज्यवाहण गीत, पार्श्वनाथ दशभव स्तवन में मुख्य रूप से रागों और ढालों के प्रयोग किये गये हैं।

राग आसावरी प्रातःकालीन राग के रूप में प्रसिद्ध है—इस बात को ध्यान में रखते हुए कुशललाभ ने 'भीमसेन हंसराज चौपई' में (चौ० सं० 219) प्रातः-कालिक वर्णन तथा श्री पूज्य वाहण गीत में (छं० 1, 11) स्तुतिगान इसी राग में किया है। रामगिरी (वर्तमान रामकली या रामकरी) प्रातःकालीन संधि-प्रकाश राग के रूप में प्रसिद्ध है—जिसमें भक्ति, निर्वेद की भावना के साथ वियोग श्रृंगार का वर्णन किया जाता है। कुशललाभ ने 'पूज्यवाहण गीत' में भक्ति और निर्वेद के उपदेश का गान तथा 'भीमसेन हंसराज चौपई' (चौ० 201-202) में भीमसेन की वियोगावस्था में निर्वेद की अभिव्यक्ति इसी राग के माध्यम से कराई है। गूड मल्हार (गौड़ मल्हार) ऋतुपरक राग है। वर्षा ऋतु में गाये जाने वाले इस राग में श्रृंगारिक वर्णन प्रस्तुत किया जाता है—'पूज्यवाहण गीत' (छं० 61-67) में राग के उक्त लक्षणों का पालन करते हुए इस राग से आवद्ध छन्दों में वर्षा ऋतु का वर्णन ही प्रस्तुत किया गया है। श्री राग की प्रसिद्धि सायंकालीन संधिप्रकाश राग के रूप में है। इसमें भक्ति और निर्वेद की अभिव्यक्ति की जाती है। कवि ने 'जिनपालित जिनरक्षित रास' में निर्वेद भाव के जागरण हेतु दक्षिण वनखण्ड के वीभत्स वर्णन प्रस्तुत किये हैं। खंभायती (खंभावती, खंभायची) तथा सोरठ या सोरठी रागों का प्रमुख रस रसराज श्रृंगार है। कुशललाभ ने 'पार्श्व-

नाथ दशभव स्तवन' में खंभायती का और 'भीमसेन हंसराज चौपई' में सोरठी राग का प्रयोग शृंगारिक वर्णनों के लिए ही किया है।

राग 'केदारो' लोक प्रचलित राग रही है, जिसका प्रयोग अनेक भक्त कवियों ने अपने पदों में किया है। यह एक सांध्यकालीन राग है तथा केदारी और नट केदार से भिन्न है। केदारी 'दीपक' राग की, पाँचवीं रागिनी है और नट केदार वाड़व जाति का एक संकर राग है, जो रात के दूसरे पहर में गाया जाता है।

सामेरी (सावेरी), केदार, गौड़ी, गूड-गोडी, गूड़ी-गुजराती और धन्यासिरी, हुसैनी का अब कोई प्रचार नहीं है। धन्यासिरी और केदार के शास्त्रीय प्रयोग अवश्य मिलते हैं।

काव्य दोष

काव्य में मुख्य अर्थ की प्रतीति में जहाँ बाधा हो, वहाँ काव्य दोष माना जाता है। बाधा उत्पन्न करने वाले ऐसे दोषों में शब्दों का अशुद्ध प्रयोग, परम्परा विरुद्ध आचरण आदि की परिगणना होती है। राजस्थानी में इस प्रकार के ग्यारह दोष माने गये हैं, जिनके नाम हैं। अंध, छबकाल, हीन, निनंग, पांगलो, जात-विरोध, अपस, नाल-छेद, पखतूट, बहरो और अमंगल। इसमें कोई संदेह नहीं कि समर्थ कवि सदा सतर्क होकर काव्य-रचना करते हैं, फिर भी कहीं-न-कहीं उनसे भी त्रुटि हो जाना संभव है। कुशललाभ के काव्य में भी इनमें से कई दोष हमें दिखाई दे जाते हैं—यथा राजस्थानी से भाषाओं के शब्द-प्रयोग से उत्पन्न छबकाल दोष (भी० हं० चौपई– दूहा सं० 385), काव्य में क्लिष्टता के कारण अर्थ-प्रतीति में बाधक अपस दोष (मा० का० कं० चौ० दू० 305), काव्य की पारम्परिक परिपाटी के विरुद्ध मनमाने ढंग के वर्णन से उत्पन्न नाळछेद दोष, द्विधात्मक अर्थ-युक्त भ्रमोत्पादक शब्द-योजना के कारण बहरो दोष, छन्द के किसी प्रथम चरण के प्रथम और अंतिम अक्षर के योग से अमंगल-सूचक शब्द निर्मिति से उत्पन्न अमंगल दोष, सर्वथा ग्राम्य या लौकिक शब्द प्रयोग से कविता में ग्राम्यत्व दोष और व्रीड़ा, जुगुप्सा तथा अमंगल भावों का आभास देने वाले अश्लीलत्व दोष की प्रतीति हमें अवश्य कुशललाभ के काव्य में दृष्टिगोचर होती है।

कथानक रूढ़ियाँ

कथानक रूढ़ियों की संयोजना हर प्रकार के साहित्य में उपलब्ध होती है, पर विशेष रूप से लोकोन्मुखी साहित्य में। कुशललाभ भी लोक का कवि है अतः यह स्वाभाविक है कि उसने अपने साहित्य में खुलकर इनका प्रयोग किया है। कतिपय प्रसिद्ध रूढ़ियाँ निम्न प्रकार हैं—

प्रेम परीक्षा, संदेश वहन, पहेलियों और गूढ़ार्थ पृच्छा का आयोजन, तिरस्कृत

प्रेमिका द्वारा लांछन, भविष्य-सूचक स्वप्न-दर्शन, अप्सराओं, यक्ष-यक्षियों या व्यन्तरियों से विवाह, पुनर्जन्म, देशनिकाला, भूतप्रेतों द्वारा सहायता, मृत प्राणियों को जीवनदान, योनि-परिवर्तन, दिव्य-जन्म, मंत्रादि शक्तियों द्वारा चमत्कार-प्रदर्शन, खेचरी विद्या की सिद्धि, शाप और वरदान, रूप-परिवर्तन, कर्म फल, पशुपक्षियों द्वारा संदेश-प्रेषण, अभिमंत्रित फल-भक्षण से गर्भस्थिति, सौतिया डाह, वन में भटक जाना और संकटों से सामना, मंत्र द्वारा स्थान परिवर्तन, अपहरण और प्रेम संघटन, निर्जन स्थान में रूपसियों से भेंट, अदृष्ट होने की विद्या, दिव्य-विद्याएँ, राक्षसों द्वारा विघ्न, अति मानवी शक्तियों का सहयोग, सर्पदंश से मृत्यु, रूप-दर्शन और श्रवण द्वारा आसक्ति, मंत्रयुद्ध, पुष्पवृष्टि, आकाशवाणी, शकुनों द्वारा भावी संकेत, दोहद कामना, जलक्रीड़ा, मनोकामना पूर्ति हेतु गौरी-पूजन, बीड़ा उठाना।

अलंकार

कुशललाभ ने स्वरचित 'पिंगल शिरोमणि' ग्रन्थ के अलंकार प्रकाश में अर्थालंकारों पर ही विशेष प्रकाश डाला है, शब्दालंकारों पर नहीं। पर इसके विपरीत उसने स्वरचित काव्य-ग्रन्थों में शब्दालंकार और अर्थालंकार दोनों का ही सहज रूप से प्रभूत प्रयोग किया है।

वयण सगाई अलंकार राजस्थानी का एक मौलिक शब्दालंकार है, जो डिंगल के कवियों का अत्यन्त ही प्रिय अलंकार रहा है। मध्यकालीन राजस्थानी साहित्य में कवियों ने इस अलंकार का प्रयोग अनिवार्य मानकर बड़ी कठोरता के साथ किया है। यह अलंकार एक प्रकार से अनुप्रास के अत्यन्त निकट का अलंकार है, पर राजस्थानी काव्य में इसे निश्चित नियमों में आबद्ध कर एक स्वतन्त्र स्थान दे दिया गया है। वयण सगाई से तात्पर्य है काव्य पदों, या छंद के चरणों में प्रथम शब्द के प्रथम अक्षर की अन्तिम शब्द के प्रथम अक्षर से अंतिम अक्षर से या चरण के मध्य के किसी शब्द में आवृत्ति। इस प्रकार इसके आदि मेल (अधिक), मध्यमेल (सम) और अन्तमेल (न्यून) तीन प्रमुख भेद होते हैं। कुशललाभ ने अपनी ओर से 'वयण सगाई' जैसे शब्दालंकार के लिए कोई विशेष प्रयास किया हो, ऐसा प्रतीत नहीं होता। फिर भी प्रायः सभी काव्य-ग्रन्थों में इसके थोड़े-बहुत प्रयोग तो देखने को मिल ही जाते हैं।

अनुप्रासों में भी छेक, वृत्ति, श्रुति, लाट, यमक के प्रयोग बहुतायत से मिल जायेंगे।

अर्थालंकारों के प्रयोग में वह शब्दालंकारों की अपेक्षा बहुत आगे हैं। इसका कारण संदेश-काव्य के मार्मिक दोहे ही हैं। कुशललाभ के साहित्य में उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, प्रतीप, तुल्य योगिता, तद्गुण, मीलित, विरोधाभास, असंगति, काव्य-

लिंग, अत्युक्ति, विषादन, अनुमान, सम्भावना, उदाहरण, स्मरण, अन्योक्ति और अप्रस्तुत प्रशंसा आदि अलंकारों का प्रयोग मिलता है। उपमा और रूपक के प्रसंग तो प्रभूत संख्या में उपलब्ध हैं ही। उपमा के सादृश्यमूलक उपमा, वाचक-धर्म लुप्तोपमा, और पूर्णोपमा; रूपक में सांग, अभेद तथा निरंग भेद उपलब्ध हैं। अर्थालंकारों के कतिपय उदाहरण निम्नांकित हैं—

सादृश्यमूलक उपमा

हीयड़ा भीतरि पइसि करि, विरह लगाइ अग्गि।
प्रिउ पाणी विण ना बुझइ, बलइ सलग्गि सलग्गि ।। 444

वाचक धर्म लुप्तोपमा

सुंदरि महज गतइ सुकमाल, मानसरोवर जेम मराल ।।
(भी० हं० चौ० 132)

चंदावदनी चंपक वर्णी, अहर अलत्ता रंग।
खंजर नयणी खीण कटि, चंदन परिमल अंग ।।
(ढो० मा० चौ० दूहा 26)

पूर्णोपमा

लघु केसरि जेहवी कडि लंक। (भी० हं० चौ० 133)

रूपक

जोवन हस्ती जउ गड्डिउ, तु अंकुस ले घरि आउ।

सांग रूपक

भव सागर समुद्र समान, राग द्वेष विने उधाण।
ममता तृष्णा जलपूर, मिथ्यात मगर अतिकूर ।। 12
मोजा ऊंचा अभिमान, विषयादिक वायु समान।
संसार समुद्र मंझारि, जीव भम्या अनंत वारि ।। 13
(पू० वा० गी० छं० 12-13)

अभेद रूपक

अम्ह चंपा किम तुट्टही, तुम्ह भमरां के भार।
(मा० का० कं० चौ० दू० 241)

निरंग रूपक

सखी ए उगट मांजणा, खिजमत करे अनंत।
मारवणी मंदिर महले, कामणि मिलियो कंत ॥
(ढो० मा० चौ० दू० 448)

उत्प्रेक्षा

चंपक वयण सकोमल अंगि, मस्तक वेणी जाणि भुयंग।
(मा० का० कं० चौ० 168)
जंघ सुपत्तल करि कुंअली, झीणी लांब प्रलंब।
ढोला एहवी मारूइ, जाणे कणयर कंव ॥
(ढो० मा० चौ० दू० 487)

परिणाम

इह तन जारूं मसि करूं, धूंआ जाइ सरग्गि।
जव प्री बादल होइ करि, वरसि बुझावइ अग्गि ॥
(मा० का० कं० 353)

विनोक्ति

ए परमारथ प्रीछिज्यो, वांची प्रीतमलेख।
पाणी मांहि पल्हाविज्यो, धरिज्यो प्रीति विशेष ॥
(मा० का० कं० 468)

विरोधाभास

संभार्यां संताप, वीसार्यां नवि वीसरइ।
कालज विच जे काप, धरहरतु फीटइ नहीं ॥
(मा० का० कं० 348)

स्वभावोक्ति

आंखडियां डंवर हुई, नयण गमाया रोइ।
ते साजण परदेसड़इ, रह्या विडाणा होइ ॥
(मा० का० कं० 448)

कवि काव्य-कौशल और अलंकारों की छटा दिखाने में कहीं नहीं उलझा है। परन्तु जो भी अलंकार इन कथा-काव्यों में आये हैं, वे सहज और स्वाभाविक रूप से रस के उपकारक बनकर आये हैं। इन कथाओं में परम्परागत उपमाओं में भी

एक विशेषता दिखाई देती है, और वह है इन पर छाया हुआ राजस्थानी रंग और रुचि। राजस्थान में सौन्दर्य के साथ शोभा सदा संयुक्त रही है। यह राजस्थानी सौन्दर्य की अपनी मौलिक विशेषता है। नायिका के नाक की उपमा शुकनासिका से तो कई जगह दी गई है, पर कुशललाभ की नायिका कामकंदला की नासिका की उपमा सर्वथा मौलिक है—

नाक जिसी दीवानी सिखि। वाहि रतन जडित बहिरखी ।।

(मा० का० कं० 13)

दीपक की लौ के समान नायिका की नासिका है। इसी प्रकार मारवणी के अलसाये नेत्रों में लाल डोरे हैं और वे कबूतर की आँखों के समान भोली भी हैं—

मारू पारेवाह ज्यूं अंखी रत्ता मंझ ।। (ढो० मा० चौ० 459)

भाव पक्ष

कुशललाभ की काव्य-कृतियाँ विषय के अनुसार आध्यात्मिक और प्रेमाख्यानक दो रूपों में विभक्त की गयी हैं। प्रेमाख्यानक काव्य-ग्रन्थों में कवि ने शृंगार रस का भरपूर आस्वादन कराया है। आध्यात्मिक रचनाओं में शान्त रस की ही प्रधानता होती है, किन्तु इस विषय की कतिपय रचनाओं में शृंगार रस की अनुभूति भी स्पष्टतः होती है। आध्यात्मिक वातावरण की पृष्ठभूमि में उसका अवसान शान्त रस में हुआ है। मुख्य रूप से शृंगार रस की ही अभिव्यक्ति इस साहित्य में देखने को मिलेगी।

कुशललाभ के साहित्य में शृंगार के संयोग और वियोग दोनों ही पक्षों की अभिव्यक्ति मिली है। ढोला मारवणी चौपई, तेजसार रास, स्थूलिभद्र छत्तीसी, भीमसेन हंसराज चौपई आदि रचनाओं में नायक नायिकाओं के विविध शृंगार प्रसाधनों से युक्त रूप-वर्णन उपलब्ध हैं। कामकंदला के नखसिख का वर्णन देखिए—

चंपक वयण सकोमल अंगि, मस्तकवेणि जाणि भुयंग।
अधर रंग परवाला वेलि, गयवर हंस हरावई केलि ।।
नाक जिस्यो दीवा नी सिखा, वांहें रतन जडित बहिरखा।
मुख जाणे पूनिम नो चांद, अधर वचन अमृतमय चंद ।।
पीन पयोधर कठिनोतंग, लोचन जाणे त्रसू कुरंग।
भाल तिलक सिर वेणी दंड, भमह वंक मनमथ कोदंड ।।

(मा० का० चौ० 188-191)

'भीमसेन हंसराज चौपई' (चौपई 134) में मदन मंजरी और स्थूलि भद्र छत्तीसी (छं० 13) में कोशा का नखसिख वर्णन भी इसी के अनुरूप किया गया है। नायकों का रूप-वर्णन इतना सशक्त नहीं हो पाया है। मदन मंजरी के रूप

सौन्दर्य का वर्णन देखिए—

सुन्दरि सहज गवइं सुकमाल, मानसरोबर हंस मराल।
लघु केसरि जेहवां कडिलंक, मलिन रहित मुख जाणि मयंक ।। 132
ओपइ कुंदण जिम तसु अंगु, चपल तुरंगम चष अति चंग।
रंभागर्भ किसी जुग जंघ, उदित बिल्व सम उरज उतंग ।। 133
अधर-पक्व बिंबाफल अणुहारि, कीर पूतली चित्र आकार ।। 134
अवला उन छइ रूप असंभ, कोमल वाणी अमृत कुंभ।
सिरजउ जउ थापउ संयोग, सफल जनम सुख रस भोग ।। 135

कुशललाभ की प्रेमाख्यानक-रचनाओं में नायक नायिकाओं की रस-चेष्टाओं, रति-केलियों, विहार, बौद्धिक मनोरंजनात्मक प्रहेलिकाओं की संयोजना भी मिलती है। वे संयोग-सुख-प्राप्त्यर्थ मिलन हेतु अनुकूल अवसर की प्रतीक्षा करते दिखाई देते हैं। प्रेमाख्यानक काव्य 'माधवानल कामकंदला में नायक नायिका मिलन होते ही शृंगार सज्जाकर रति क्रीड़ा में प्रवृत्त हो जाते हैं।

'भीमसेन हंसराज चौपई' में भी ऐसे वर्णन उपलब्ध हैं, पर संक्षेप में और संयत भाषा में वर्णित। 'माधवानल कामकंदला चौपई' में कवि ने रति केलि के उपरान्त मनोविनोद के लिए प्रहेलिका-पृच्छा का भी आयोजन कराया है।

कुशललाभ की रचनाओं में अवलोकन, मिलनोत्साह, आवेग और अश्रु जैसे अनुभाव तथा स्वप्न, अतृप्ति, लज्जा, जैसे संचारी भाव प्रदर्शक प्रसंग भी प्रस्तुत किये गये हैं।

संयोग पक्ष के चित्रण कामकंदला और माधव, मालवणी और ढोला, मारवणी और ढोला, मारवणी मालवाणी और ढोला, तेजसार और उसकी आठों रानियों, मदन मंजरी और भीमसेन तथा रूपमती और राजहंस के संयोग में उपलब्ध हैं।

मालवणी के साथ अपने विवाह से अनभिज्ञ ढोला और मालवणी के मिलन में दोनों को अपार आनन्द की अनुभूति होती है, दानों में अपार प्रीति है, पर ढोला को मारवणी के साथ हुए परिणय की जानकारी मिलने पर वियोग की आशंका से ग्रसित प्रेमियों में शृंगारिक उन्मुक्तता का लोप-सा हो जाता है। उनके संवादों में भी पहले की भाँति संयोग की उन्मुक्त गहराई नहीं रह जाती।

ढोला के पूगल पहुंचने पर मारवणी को प्रियतम के आगत संयोग का सूचक स्वप्न दिखायी देता है और मारू में प्रिय मिलन की उत्कट अभिलाषा जाग उठती है—

घर नीगुल दीवउ सजल, छाजइ पुणग न माइ।
मारू सूती नींद भरि, साल्ह जगाई आइ ।। 484
सारस सद्दारेह, भूषउ मांस पत्राखियां।
अडियो अंत्रारेह, जाणे ढोलउ आवियो ।। 485

सुरहि सुगंधि वाट, जाणे किर मोती जड्या ।
सूनी माझिम राति, जाणे ढोलो आवियो ।। 486

उसके स्वप्न को साकार करने वाला संयोगावस्था का सूचक दक्षिण नेत्र फड़क उठता है। वह कुएँ पर जाती है और उसका स्वप्न सच्चा हो उठता है। सखियों ने मारू का चंदन से उबटन कर श्रृंगार किया और रात होने पर उसे प्रिय के पास छोड़ कर चली गयीं। प्रथम मिलन में ही दोनों एक-दूसरे पर मुग्ध हो गए। मारवणी के हँसने पर उसकी दंत-पंक्ति से बिजली की चमक का भ्रम हो गया।

शील की सीमा में बँधे संयोग-चित्रण काव्य में स्वाभाविकता का संचार करते हैं। संभोग की स्थितियों के चित्रण में कवि ने प्रतीकात्मकता का सहारा लिया है।

मन मिलिया तन गड्डिया, मनि मंझे मिलियांह ।
सज्जन पाणी पीर जिम, धीरे धीर थयांह ।। 578
ढोला मारू एकठा, करे कतूहल केलि ।
जाणे चन्दन रूंखडे; चढीत नागर वेलि ।। 580

कामकंदला माधव संयोग के समय उपमानों के आश्रय से कंदला के सौन्दर्य का वर्णन किया गया है। कंदला और माधव की प्रेम चेष्टाओं में मानसिक और शारीरिक सुख का प्रगाढ़ रंग है। तन मन दोनों तन्मय होकर उत्सव मनाते हैं।

माधव से मिलने पर कंदला के निर्विकार मन में रति स्फुरण के जागृत भावों के प्रतिक्रिया स्वरूप होने वाली चेष्टाओं का वर्णन देखने योग्य है—

प्रेम प्रकासइ मोडइ अंग, कसणा भंजइ जाणि भुयंग ।
आलस अंगि जमाइ करइ, विरह विथा जल लोचन भरइ ।। 250
नयण बाण सा वेधइ बाल, घालइ कंठि बांहि सुकुमाल ।
करि सिउ खंचइ कुसुमा माल, प्रेम जागइ उर ततकाल ।। 251

विप्रयोग श्रृंगार

इनमें पूर्व राग, प्रवास विप्रलंभ और करुण विप्रलंभ की अवस्थाओं का चित्रण हुआ है। ढोला मारवणी चौपई में मारवणी के प्रेम, गुणकथन तथा स्वप्न दर्शन में, हंसराज भीमसेन चौपई में योगी और शुक द्वारा भीमसेन के रूप गुण वर्णन में और माधवानल कामकंदला में प्रत्यक्ष दर्शन के परिणाम स्वरूप उद्भूत पूर्व राग विप्रलंभ की प्रतीति कराई गयी है। प्रवास विप्रलंभ की अभिव्यंजना माधवानल कामकंदला चौपई में कामसेन द्वारा माधव के देश निष्काशन के समय, कामकंदला की प्रवास विरहाभिव्यक्ति में तथा ढोला मारवणी चौपई में ढोला के पूंगल के लिए प्रस्थान की वेला में मालवणी के विलाप में हुई है। करुण विप्रलंभ की

अनुभूति मदनमंजरी के देहावसान पर अगड़दत्त के विलाप में, सर्पदंशन द्वारा मारवणी की मृत्यु पर ढोला के विलाप में, मदन मंजरी के गुम हो जाने पर भीमसेन के अग्नि प्रवेश के निश्चय में, तथा कामकंदला और माधव की प्रेम परीक्षा में हुई मृत्यु के उपरान्त व्याप्त वातावरण में स्पष्ट होती है। माधव के विरह में कामकंदला के हृदय में दावाग्नि सुलग रही है, पर धुआँ नहीं निकल पाता। उसकी स्थिति लता से टूटकर अलग हुए निरन्तर पीले पड़ते पत्तों के समान हो गयी है—

हियडा भीतर दव बलइ, धूंओ प्रगट न होइ।
वेलि विछोह्या पानडा, दिन दिन पीला होइ ।। 408

अनुभाव के चित्रण में शृंगार प्रसाधनों का त्याग, भूमिपतन, अरुचि, अश्रुपात और स्तम्भन तथा संचारी भावों में विबोध, दैन्य, निर्वेद, त्राण, विषाद और स्मृति-जन्य भावों को कवि ने कागज पर उतारा है। यथा—

तजइ तिलक काजल तंबोल, मंझण न हावण खोल अंगोल ।। 361
छंडै रंगित दक्षिणचीर, न करइ सोल सिंगार सरीर।
उभी थी धड़हड़ पड़ी, जाणे कसगी वद्ध ।। 360
ढोलो चाल्यो हे सखी, बाज्या विरह नीसांण।
हाथें चूड़ी खीही पड़ी, ढीला थया संधान ।। 429
बीछड़ता ही सज्जनां, राता किया रतन्न।
वारी वे त्रिहुं राषीया, आंसू मति व्रन्न ।। 435

कुशललाभ ने साहित्य दर्पणकार द्वारा उल्लिखित विरह की दश कामजन्य दशाओं में से प्रायः 8 का वर्णन किया है। वे हैं—अभिलाषा, चिन्ता, गुणकथन, उद्वेग, स्मृति, जड़ता, मूर्छा और प्रलाप।

इन कथाओं में शृंगार रस को प्रमुख रस के रूप में ग्रहण किया गया है, पर सहज रूप में उद्भूत रस की अवस्था के पारम्परिक रूप के दर्शन उसमें नहीं होते।

कवि की कृतियों में शान्त रस सहायक रस के रूप में उपलब्ध है। उसके काव्य जैन-धर्म के सिद्धान्तों के प्रचार के हेतु लिखे गये हैं, जिनका उद्देश्य राग-द्वेषों से विमुख होकर वीतरागी पथ की ओर पाठक को बढ़ाना है। मोक्ष और अध्यात्म की भावना इनमें प्रमुख है। कवि ने अपने साहित्य को वीतरागियों की भक्ति का उपजीव्य बनाकर भी नवकार महिमा का बखान किया है। वह कभी भगवान जिनेश्वर की प्राप्ति हेतु पात्रों को गुरु से दीक्षित कराता है कभी तीर्थ यात्रा कराता है, तथा कभी वैराग्य भाव ग्रहण कराता है। अन्य जैन कवियों की भाँति शान्त रस के माध्यम से शृंगार की अभिव्यक्ति करता है।

वीररस

कुशललाभ के साहित्य में वीररस के वर्णन भी हैं। कुशललाभ ने नायिका को नायक के प्रेम में अधिक अनुरक्त कराने की दृष्टि से अवसर पाकर नायक की तेजस्विता, शौर्य और नायिका की रक्षा की सामर्थ्य का उद्देश्य रखकर युद्ध करते दिखाया है। कवि ने नायक के शौर्य, आतंक, निर्भीकता, साहस और आत्म-बलिदान के रूप में वीररस का चित्रण किया है। पर तेज सार रास में तेजसार के राक्षस के साथ युद्ध, पंड्याणी के साथ युद्ध, सूरसेन के साथ युद्ध, विद्याधर के साथ युद्ध, तथा समर सार के साथ हुए युद्धों में वीररस स्पष्ट उपलब्ध है। मंत्र-विद्या के बल पर हुए युद्धों में कुतूहल की सृष्टि तो होती है – पर वीर रस का परिपाक उसमें नहीं हो पाया है।

भीमसेन हंसराज चउपई में युद्ध विषयक अनेक प्रसंग आये हैं, जिनमें वीररस का आस्वाद मिलता है। यथा—

तिहि ठामि सगर नरेन्द्र सेनामध्य रात्रि तणइ समइ।
चिहुं दिस दळ चतुरंग आव्या थयउ सार गमगमइ ॥ 197

बहु कोलाहल धाडि मिलावहु पूर पंखाला सेना बिढ़इ सहू
सहू सेन झूझइ नर अमूझइ सबल दल भग साभली।
तिणवार आप चढउ तुरंगम भीमसेन महाबली
एकली रथि तिहां रही, रामा बीहती भुइं ऊतरी।
आधार तरुमइ मध्य पइठी फौज बिहू दिसी परहरी ॥194

एहवइ भीम नरेन्द्र भारथि भिडि परदल भंजिया।
निजसेन जीतो सगर नाठउ राय मन महि रंजिया ॥200

करुणरस

करुणरस का उदय पीणे सर्प के द्वारा मारू के श्वांस को पी जाने से हुई मृत्यु के फलस्वरूप होता है। करुण रस की अभिव्यक्ति देखिए—

मुख जोवइ दीवाधरी, पाछउ करइ पलाह।
मारू दीठी सांस विण, मोटी मेल्हइ थाह ॥572
सोहउ सहु भेलाकिया, तिणवेला तिणवार।
नरनारी सहु बिलबिलइ, हय हय सरजणहार ॥573
वउलाओ प्रति ढोलउ कहइ, ए दुख जीवे नइ कुण सहइ।
एहुर वरुपउ जोडइ हाथि, पइसिसि पावक मारू साथि ॥581

कामावती में माधव से विछोह के समय कामकंदला का विलाप, माधव और कामकंदला की मृत्यु पर विक्रमादित्य का पश्चात्ताप, मारवणी की मृत्यु पर ढोला

की उक्तियाँ, मदन मंजरी के सर्प-दंशन पर अगड़दत्त का विलाप आदि प्रसंगों में करुण रस की व्याप्ति है। दो उदाहरण प्रस्तुत हैं—

सर्प दंश दीधइ खड़हड़ी, अगड़दत्त नइ खोळइ पड़ी।
कुमर करइ तव हाहाकार, हे हे देव हुवउ निरधार॥
—(अग० रा० चौ० 251-52)

जीमइ नहीं सरस आहार, जां न मिलइ माधव भरतार।
विधवा वेसइ ते विरहणी, दुर्बल देह कीधी प्री घणी॥
—मा० का० कं० चौ० 362

वीभत्स रस

वीभत्स रस का वर्णन भीमसेन हंसराज चौपई में सिंह की गुहा में विकीर्ण अस्थि-पंजरों में, तेजसार रास चौपई, में राक्षस के वीभत्स रूप और महामाई दुर्गा-सातसी में मांस भक्षण करते गृद्धों, तथा खप्पर भरकर रक्तपान करती चौंसठ योगिनियों के प्रसंगों में प्रस्तुत किया गया है यथा—

तिहां असिद्ध जीवा तणा, मुनिप घणा मृत रूप।
भुइं दीसइ विभच्छ अति, विरूइ गंधि विरूप॥
—(भी० हं० चौ० छ० 424)

कालवर्ण कूर विकराळ, मुखि मूकइ वेश्वानर झाळ।
पग प्रहार भुंइ धरहरई, कोप चढ्यउ मुखि कलंकल करइ॥
—(तेजसार रास चौ० सं० 28)

गिद्ध तणउ साथ गहगहीयउ, लंघण घने घणे भख लहीयउ॥
देव हुई तस दांणव टोली, हमची मचइ गेहरीयां होली।
खाफर मंडइ खेलइ खोली, रासइ रंगत चउसठी टोली॥

रौद्र

ढोला मारवणी चौपई में मालवणी के प्रति सास द्वारा प्रदर्शित कोप में, मारू से मिलने हेतु जाने की उतावली में, ढोला द्वारा ऊँट को पीटने और व्यक्त अपशब्दों में तथा निरपराध गधे को दग्ध करवाने पर मालवणी के प्रति सास के क्रोध में रौद्र रस अभिव्यक्त हुआ है। 'माधवानल काम कंदला चऊपई' में क्रोधाभिभूत गोविन्द चन्द द्वारा माधव के देश निष्कासन, और माधव द्वारा राजा से प्राप्त द्रव्य नर्तकी को देकर उसके नृत्य की प्रशंसा करने पर क्रोधित राजा के स्वरूप में भी यह रस झलकता है। "महामाई दुर्गा सातसी' में महिषासुर मर्दन के लिए तत्पर देवी के स्वरूप में रौद्र के स्पष्ट दर्शन होते हैं। प्रसंग प्रस्तुत है:—

'कालिक दूह ब्रहमंड कीधा, रोहिर भखण जोगणी रींधा।
गड़गड़इ सिंध, पूरती ग्राह, अरिही देव अरि दलण आह॥

दालिया देव गुण सयल ढींच, भड गिद्ध भिडइ दांणवी भीच ।
ऊससइ खसइ निहसइ अपार, धड़हड़इ सूर धगधगइ धार ।।
निहसिया निवड़ वाजा निन्नीठ, रिण माहि रुक वापरइ रीठ ।।

(म० दु० सा० 89-91)

भयानक

भयानक रस की निष्पत्ति 'जिनपालित जिनरक्षित रास' में सिंहणी के आक्रमण, 'तेजसार रास चौपई' में चतुर्दशी की अंधेरी रात्रि में पंड्याणी द्वारा विद्यार्थियों की बलि हेतु तैयारी में तेजसार द्वारा राक्षसों से मिलन में , उसके द्वारा दण्ड प्रहार से भूत-प्रेतों के सर्वनाश में, 'भीमसेन हंसराज चौपई' में रात्रि में दीपक के दिखाई देने; तथा नागों से वेष्टित वृक्षों और भयग्रस्त रानी के कंठावरोध में होती है। यथा—

सीहणि नीयरि ऊससइजी, करि जबकइ करवाल ।
आवी पुरुषां ऊपरइजी, रूप कीयउ विकराल ।।
वेइ बोलइ वीहताजी, सामिणी अम्ह साधारि ।
कह्यउ तुम्हारउ कीजसीजी, अम्ह जीवता उगारि ।।

—(जिन-पा० जि० र० चौ० 24, 26)

वात्सल्य

प्रिय जन के प्रति रतिभाव ही वात्सल्य में परिगणित होता है। 'ढोला मारवणी चौपई' में मारवणी के जन्मोत्सव पर व्यक्त आनन्द, पुत्र की कामना से नल की पुष्कर तीर्थ की यात्रा और पुत्र जन्म पर मनाये गये महोत्सव, 'मा० का० कं० चौपई' में शंकरदास को अनायास पुत्र प्राप्ति के महोत्सव में इस रस का आस्वाद प्राप्त होता है। माधव के पुष्पावती नगरी में पुनः प्रवेश की वेला में पुत्र द्वारा पिता के चरण स्पर्श और पुत्र को पहिचान कर गद्गद् हुए पिता द्वारा पुत्र को आलिंगनबद्ध करने में, वात्सल्य की वास्तविक अनुभूति होती है। ऐसी ही अनुभूति व्यंतरी के रूप में अटवी में उतरी तेजसार की माता द्वारा वात्सल्य भाव से अभिभूत हो पुत्र की ली गई 'भामणा' में दिखाई देती है। प्रसंग उद्धृत है—

पुत्र उलख्यो प्रोहित जिसई, हरषइ वूठा आंसू तिसई ।
आघो ले आलिंगन दीयई, अति आणंदइं खोळइं लियइ ।।

(मा० का० कं० चौ० 644)

रे जाया नंदन माहरा, हूं भामण लेऊं ताहरा ।
आज सही मुझ उर तरु फल्यो, तूं मुझ पुत्र घणे दिन मिल्यो ।।

—(ते० सा० रा० चौपई 293)

हास्य

हास्य रस का आनन्द ढोला मारू की संयोग वेला की वार्ता तथा मारवणी मालवणी-संवाद में, 'स्थूलिभद्र छत्तीसी' में योगी के रूप में, कोशा वेश्या की चित्रशाली में आते स्थूलिभद्र को देखकर कोशा की सखियों द्वारा ली गई व्यंग्यपूर्ण चुटकियों में दिखाई देता है।

कवि ने इस प्रकार यथा-प्रसंग विभिन्न रसों से युक्त वर्णनों द्वारा काव्य को सुष्ठु बनाया है।

प्रकृति चित्रण

साहित्यकार को प्रेरणा देने वाली प्रकृति ही है। प्रकृति के साहचर्य से ही साहित्य 'सत्यं शिवं सुन्दरं' का प्रतीक बनता है। कुशललाभ ने भी प्रकृति-प्रदत्त प्रेरणा का लाभ लेते हुए अपने साहित्य में उसका उपयोग किया है, पर वह मात्र वातावरण निर्माण की दृष्टि से ही किया गया है। अतः चित्र-विचित्र प्रकृति विषयक वर्णनों का उसमें सर्वथा अभाव है। उसने प्रकृति-चित्रण का आश्रय आलंबन, उद्दीपन, दार्शनिक, तथा उपदेशात्मक और रहस्यात्मक पृष्ठभूमि के वातावरण-निर्माण के लिये ग्रहण किया है।

'भीमसेन हंसराज चौपई' में हमें प्रायः प्रकृति के परिगणनात्मक रूप की छटा के ही दर्शन होते हैं। नन्दन वन के सौन्दर्य की श्रीवृद्धि कर रहे तरुराजि का परिगणनात्मक वर्णन प्रस्तुत है।—

सरस सदाफल नइ सहकार, अगर अशोक अरजन्न अनार।
करणा केलि कपूर कदंब, जातीफल जामुन ओ जंब ॥ 24 ॥
पारजाति पदमाख पुन्नाग, सूंकडि सिमी सिव नइ साग ॥
रायण रोहिडा रोहींस, वेड सवेड वरुण नइ वंस ॥ 25 ॥
श्रीफल सोपारी सु-रसाल, तगर तिमर तिदुक नइ ताल।
नींबू नियजा नइ नारिंग, पीपल-पारस पीलु प्रियंग ॥ 26 ॥

तेजसार रास और ढोला मारवणी चौपई में भी ऐसे ही वर्णन अनेकशः किये गये हैं।

प्रकृति के विम्बात्मक रूप को काव्य में उतारने का प्रयास कवि ने कतिपय स्थलों पर किया है—पर वह संश्लिष्ठ और रूढ़ वर्णन ही है। कुशललाभ ने उससे हटकर कोई नयी दिशा इसमें दी हो, ऐसा नहीं लगता। कुशललाभ ने अनेक प्रसंगों के माध्यम से ऐसे चित्रांकन करने चाहे हैं— पर सर्वाधिक मनोरम चित्र वह वर्षा ऋतु के वर्णन में ही प्रस्तुत कर सके हैं। स्थूलिभद्र—छत्तीसी, तेजसार रास, पूज्य वाहण गीत आदि में ऐसे चित्र देखने को मिल जायेंगे। तेजसार रास चौपई में प्रयुक्त ऐसे एक स्थल का नमूना प्रस्तुत है—

अनुक्रमि आव्यउ पावस मास, मेघ घटा छायो आकास ।
सांझ समैं वेलां अंधार, घरि घरि प्रदीप कियो तिण वार ।। 384
तेल लेइ आवै जिसै, सवल मेह आव्यउ तिहां तिसै ।
धाई पइठी देहरा मांहि, मूल गंभारे घणे उछाहि ।। 387
तेल पखे दीवा तिगमगइ, नारि एकली रही नवि सकइ ।।
वरसइ मेह अखंडित धारि, जडी किमाडि वैठइ ते नारि ।। 389

उद्दीपक रूप में भी कुशललाभ ने प्रकृति वर्णन का आश्रय अनेक स्थलों पर लिया है। नायक नायिकाओं के प्रेम-प्रसार में वर्षा ऋतु की उद्दीपन रूप में प्रस्तुति देखिए—

हिवइ आव्यो वर्षा काल, अंवरि अति गाजइ असराल ।
वर्षा रितु जल वन विस्तार, मदि आव्यउ मदगलि तिणिवार ।।

आषाढ़ मास में अभ्राच्छादित आकाश में चमकती बिजलियाँ, प्रियतम के लिए प्रतीक्षा रत कोमलांगी रमणियां, चातक की पीउ पीउ की निरन्तर टेर, वर्षा की निरन्तर झड़ी से सराबोर सर सरित और ऐसे वातावरण में यति श्रीपूज्य का श्रावकों को आनन्द प्रदान करने हेतु त्रंत्रावती में आगमन, दीक्षा रूपी रमणी के साथ क्रीडा हेतु गुरु रीति में प्रतीति, संवेग रूपी सुधारस से सराबोर सरोवर में संयोग के लिए संचरित पंच महाव्रत रूपी मित्रों का सुमति गुप्ति रूपी श्रेष्ठ रमणियों के साथ संयोग का सौभाग्य वरण करते हुए, उत्तुंग तरंगायित उपशम का पालन करते हुए वताया गया है।

'ढोला मारवणी चौपई' में विरह व्यथिता मारवणी को कुरजा का बोल सार की तरह सालता है या आर की भांति विदारता है। 'माधवानल कामकंदला चौपई' में माधव के वियोग में नायिका कंदला वेल से विलग पत्तों के समान पीली पड़ रही है।

सारहली जिउं साल्हियां, सज्जण मंझ सरीर। (ढो० मा० चौ० 246)
सूनी साजण संभरयां, उह भरिया नयणेह 11 (ढो० मा० चौ० 247)

रहस्यमय और दार्शनिक रूप में प्रकृति का वर्णन पूज्य वाहण गीत में 'सूय-गडांग सूत्र' में वीरस्तवन के माध्यम से रहस्यमयी सत्ता के अस्तित्व का वर्णन करते हुए किया गया है। इसी भाँति प्रकृति का आश्रय ग्रहण कर उसके माध्यम से मानव जीवन के लिए उपयोगी अनेक नैतिक उपदेश भी यत्र तत्र दिलाये गये हैं।

इसी प्रकार पृष्ठभूमि और वातावरण निर्माण या कथा में मोड़ देने की दृष्टि से प्रकृतिजन्य पदार्थों का यथा-प्रसंग वर्णन किया गया है। हृदय के सूक्ष्म भावों को प्रकृति से प्रतीक ग्रहण करके भी प्रस्तुत किया जाता है। प्रकृति के ये अनेक पदार्थ उदात्त भावनाओं को प्रकट करने के कारण तथा आन्तरिक सादृश्य के कारण प्रतीक बन गये हैं।

6
समाज और संस्कृति

प्राचीन जैन वाङ्मय में अत्यन्त सुव्यस्थित और सुगठित सामाजिक व्यवस्था के दर्शन होते हैं। एक आदर्श लोकजीवन, रहन-सहन, रीति-रिवाज आदि का ज्ञान इन काव्यों में उपलब्ध कथोपकथन, व्यवहार एवं वर्णित परिस्थितियों के वर्णनों के माध्यम से स्पष्ट रूप से प्राप्त किया जा सकता है। कुशललाभ के साहित्य का प्रमुख आधार यह साहित्य ही रहा है। अतः यह स्वाभाविक है कि उसके काव्यों में उपलब्ध सामाजिक व्यवस्था विषयक विवरण पारम्परिक या रूढ़िगत हो। समकालीन परिस्थितियों से भी कवि या साहित्यकार अप्रभावित नहीं रह सकता, उसका भी उस पर प्रभाव पड़ेगा ही। कवि का ध्येय होता है—समकालीन समाज में व्याप्त अव्यवस्था को दूर कर पुरातन साहित्य या अपनी कल्पनाओं के माध्यम से एक स्वस्थ समाज का निर्माण। पर कुशललाभ अपने युग की सामाजिक व्यवस्था का सफल उद्घाटक सिद्ध नहीं होता। जो भी सामाजिक, सांस्कृतिक चित्रांकन उसके साहित्य में हुआ है, वह प्राचीन और उसके समकालीन समाज की व्यवस्था के साथ उसके आदर्श की परिकल्पनाओं का मिश्रण ही कहा जा सकता है।

प्राचीन काल से ही वर्ण-व्यवस्था में ब्राह्मणों का पद सर्वोच्च माना जाता था। कुशललाभ के साहित्य में इस परम्परा का निर्वाह किया गया है। ब्राह्मण की श्रेष्ठता और उसकी छलछद्म-हीनता का इसमें चित्रण है। वह अपराधी होने पर भी अवध्य माना गया है। राज-सभा इस बात का ध्यान रखती है कि राजा निरंकुश होकर ब्राह्मण के प्रति स्मृति-विरुद्ध कोई निर्णय न ले बैठे। (मा० का० चौ० 222)। ब्राह्मण की 'सीतल जात' (पवित्र वर्ण) कहकर ढोला मारवणी चौपई में ब्राह्मण से संदेश वाहक-जैसा निम्न कोटि का कार्य नहीं कराया जाता। (ढो० मा० चौ० 273)। कहीं-कहीं साम्प्रदायिक मतभेद के कारण कुशललाभ ने ब्राह्मणों पर दोषारोपण भी किये हैं।

'तेजसार रास चौपई' में इसी दुराग्रह के कारण प्रतिष्ठान-वासी ब्राह्मण सोमदत्त के पुत्र वल्लभाचार्य को अत्यन्त मिथ्यावादी कहा है। (ते० सा० रा० 373) उस समय, पुष्टि-मार्ग-प्रवर्तक वल्लभाचार्य का प्रभाव धीरे-धीरे राजस्थान के राज-परिवारों में, विशेषतः अपने को कृष्ण का वंशज मानने वाले जैसलमेर

जैसे राज-परिवारों में फैलता जा रहा था पर कुशललाभ का वल्लभ वह प्रतीत नहीं होता। माधवानल कामकंदला चौपई का नायक माधव तो स्वयं ब्राह्मणवंश में पालित पुत्र है। वह बुद्धिमान, तेजस्वी, धैर्यवान, कलामर्मज्ञ और एक प्रेमी के रूप में प्रस्तुत किया गया है।

कुशललाभ का काव्य क्षत्रिय-वर्ग से सर्वाधिक सम्बन्धित है। एक राजा के रूप में क्षत्रिय के प्रजा के प्रति कर्त्तव्य पालन, राज्योचित दर्प, कलाकारों को सम्मान देना, परदुःख-भंजक आदि गुणों को ही प्रगट किया गया है।

वैश्य वर्ग को स्वधर्म के अभ्युदय हेतु सदा अग्रणी, भक्तिभाव में सदा रत रहने वाला कहा गया है। साथ ही विभिन्न प्रकार के व्यापार, व्यवसाय के द्वारा समाज की अर्थव्यवस्था में निभाई जाने वाली उसकी भूमिका के विषय में भी यत्र-तत्र संकेत दिया गया है।

शूद्र को अपने से श्रेष्ठ वर्ण ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य की सेवा-शुश्रूषा में रत रहनेवाला दिखाया गया है। ढाढी, भाट, दम्मामा, खवास, डूंम, मंगता आदि जातियों, की सेवा शुश्रूषा के माध्यम से इस वर्ग की ओर संकेत तो किए गये हैं पर समाज में उनकी स्थिति या उनकी अपनी सामाजिक व्यवस्था पर कोई विशेष प्रकाश नहीं पड़ता। इतनी जानकारी अवश्य मिलती है कि इनकी सेवाओं के बदले इनको प्रभूत धन दिया जाता था।

समाज अनेक जातियों में विभाजित हो गया था। ये जातियाँ उनके कर्म के आधार पर ही बनीं और उसी के आधार पर इनके स्वतन्त्र संगठन स्थापित हो गये। सामन्ती व्यवस्था के साथ सम्बद्ध पुरोहित, प्रजापत (कुम्हार), चारण, भाट, ढाढी, भोजक, महात्मा, जोगी, रेबारी, दमामं आदि का उल्लेख प्रमुख रूप से काव्यों में देखने को मिलता है। जातियों को उपजातियों में विभाजित हुआ भी हम देखते हैं। भीमसेन हंसराज चौपई में राजपूत जाति में उत्पन्न हुई ऐसी अनेक शाखाओं का उल्लेख किया गया है। माधवानल कामकंदला चौपई और ढोला मारवणी चौपई में भी इस प्रकार की जातियों का विशेष वर्णन देखने को मिलता है।

कुशललाभ की रचनाओं में हमें आश्रम-व्यवस्था के संकेत भी मिलते हैं, लेकिन वे स्पष्ट नहीं है। गुरु के आश्रम में ब्रह्मचर्य का पालन करते हुए विद्यार्थियों का विद्याध्ययन, युवावस्था में विवाह-बंधन में बँध कर गृहस्थ-धर्म के पालन, वृद्धावस्था में वैराग्य की भावनाओं के उदय और अपने उत्तराधिकारियों को घर-बार या राज्य का भार सौंपकर संन्यास ग्रहण के प्रसंग प्रायः हर कथा-काव्य में मिल जायेंगे। जैन-धर्म की परम्परानुसार कुशललाभ ने भी अपने कथा-नायकों को अन्त में किसी जैन-मत से दीक्षित कराया है और अन्तिम समय में शील, और सम्यकत्व का पालन करते हुए केवली धर्म का आचरण करने वाला प्रदर्शित

किया है।

कुशललाभ के साहित्य में पारिवारिक-व्यवस्था का भी अवलोकन किया जा सकता है। इनमें हमें पितृ-सत्तात्मक प्रणाली देखने को मिलती है। गृहस्वामी के पद पर हम परिवार के वयोवृद्ध व्यक्ति पिता को प्रतिष्ठित पाते हैं, जिसकी आज्ञा का पालन परिवार के प्रत्येक सदस्य के लिए अनिवार्य है। पुत्र सदा माता-पिता के आज्ञा-पालक और उनकी सम्मति और सहमति से चलने वाले दिखाए गये हैं। इसी प्रकार पुत्र-वधुएँ भी सास-ससुर की आज्ञा पालन करने वाली बताई गयी हैं। बड़ों की आज्ञा की अवहेलना करनेवालों को जीवन में भयंकर विपत्तियों का सामना करते दिखाया गया है। नवागत वधुएँ सास-ससुर और ननदों के चरण स्पर्श करती हैं और आशीर्वाद के साथ उन्हें भेंटस्वरूप ग्राम, नगर, स्वर्णाभूषण और बहुमूल्य परिधान दिये जाते हैं।

मनुष्य के जीवन में पुत्र-जन्म का बहुत महत्त्व माना गया है। पुत्र-प्राप्ति के लिए मनुष्य देवी-देवताओं की मनौतियाँ मनाते थे, तीर्थ-यात्राएँ करते थे। 'ढोला मारवणी चौपई' में राजा नल पुष्कर के वराह देवता की मनौती मानता है और पुत्र पैदा होने पर दिये गये संकल्प के अनुसार वह पुष्कर तीर्थ की यात्रा भी करता है। 'तेजसार रास चौपई' में भी अवन्तीपुर का राजा पुत्र की प्राप्ति के लिए देवताओं को पूजता है। संतान न होने पर व्यक्ति अपनी प्रथम पत्नी की सहमति से या उसके बिना भी दूसरा विवाह करते थे। माधवानल चौपई में पुरोहित शंकरदास पुत्र पैदा न होने पर एक-एक कर अनेक विवाह कर लेता है। पुत्रैषणा की पूर्ति किसी बालक को गोद लेकर भी कर ली जाती थी। यह आवश्यक नहीं था कि अपने गोत्रज या सपिण्ड को ही गोद लिया जाये। अपने भागिनेय को भी गोद लिया जा सकता था। तेजसार रास में अवन्तीपुर का राजा निराश होकर अपने भानजे समरसेन को गोद लेता है।

हिन्दू परिवारों में वैदिक मान्यतानुसार सोलह संस्कारों को अत्यधिक महत्त्व दिया जाता रहा है। कालान्तर में धीरे-धीरे इन संस्कारों की अनिवार्यता को समाज ने भुला दिया। फिर भी कतिपय संस्कार अवशिष्ट रह गये। कुशललाभ के साहित्य में हमें गर्भाधान, सीमन्तोन्नयन, नामकरण, विवाह और अन्त्येष्टि-जैसे संस्कारों का चित्रण यत्र-तत्र मिल जाता है लेकिन इनसे सम्बन्धित विधि-विधान की जानकारी इनमें नहीं मिलती। गर्भवती स्त्री के दोहद की पूर्ति पति के लिए एक अनिवार्य कर्म था। भीमसेन राजहंस चौपई में गर्भवती मदनमंजरी को लेकर दोहद-पूर्ति के लिए राजा को वनखंड में गमन करते और अनेक कष्ट सहते प्रदर्शित किया है।

पुत्र-जन्म पर आनन्दोल्लास सहित महोत्सव मनाने के वर्णन ढोला मारू चौपई, तेजसार रास चौपई, भीमसेन-हंसराज चौपई आदि रचनाओं में प्राप्त होते

हैं। काव्य ग्रन्थों में पुत्री के जन्म को भी उतना ही महत्त्व दिया गया है जितना पुत्र के जन्म को। मारवणी के जन्म पर भी माता-पिता ने पुत्र-जन्म के समान ही अत्यन्त हर्षोल्लास का अनुभव किया। नगर में बधावे गाये गये। माधवानल कामकंदला चौपई, ढोला मारवणी चौपई, और तेजसार रास चौपई में पुत्रों के नाम क्रमशः माधव, साल्हकुमर, तेजसार, रखने के उल्लेख हैं। जन्म के उपरान्त पुत्रों की बाल्यावस्था में ही मृत्यु हो जाने के भय से मृतवत्सा स्त्रियाँ अपने पुत्रों के विचित्र नाम भी रख दिया करती थीं। काव्य में साल्हकुमार का नाम ढोला रखने का यही कारण बताया गया है। इन संस्कारों की प्रक्रिया के विषय में काव्य मौन है।

धर्मशास्त्रों में और तद्नुसार लोक में भी विवाह संस्कार को अत्यधिक महत्त्व-पूर्ण स्थान प्राप्त है। विवाह का मुख्य उद्देश्य सुयोग्य संतान को जन्म देकर पितृ-ऋण से उऋण होने और संतति के सतत विस्तार से है। कुशललाभ ने भी विवाह का उद्देश्य धर्म, काम और मोक्ष की प्राप्ति माना है। माधवानल कामकंदला चौपई में सन्तानोत्पत्ति और भोग को विवाह का उद्देश्य बताते हुए इसे 'पुण्यफल' की संज्ञा दी गयी है।

धर्म शास्त्रों में आठ प्रकार के विवाह कहे गये हैं। कुशललाभ की रचनाओं में प्रमुख रूप से प्राजापत्य, गांधर्व, और राक्षस-विवाह के दर्शन होते हैं। वर-वधू के चयन में माता-पिता की भूमिका महत्त्वपूर्ण होती थी। वे उनके गुणावगुणों को देखकर सम्बन्ध निश्चित करते थे। वर-वधू के चयन में पुरोहित, नाई या किसी अन्य माध्यम का भी उपयोग किया जाता था। कन्या को अपना जीवन साथी चुनने का पूरा अधिकार था। उसकी इच्छा के विरुद्ध माता-पिता द्वारा सम्बन्ध निश्चित कर दिये जाने पर वे आत्मघात तक के लिए सन्नद्ध हो जाती थीं। माता-पिता अपनी पुत्री की प्रसन्नता के लिए अपनी भूल के सुधार हेतु सदा तत्पर रहते थे।

विवाह सामान्यतः वयस्क होने पर युवावस्था में होते थे, लेकिन समाज में बाल विवाह की प्रथा भी प्रचलित थी। यह ढोला और मारवणी के विवाह से स्पष्ट है। राजा नल और देवडी भी अपने विवाह के समय वयस्क नहीं थे। यही स्थिति माधव की भी है, जिसका विवाह बारह वर्ष की अल्पवय में ही सम्पन्न हो गया था।

समाज में स्वयंवर प्रथा का भी प्रचलन रहा है, जिसमें गुणावगुणों को देख कर राजकुमारियाँ अपने पति का चयन करती थीं। 'भीमसेन हंसराज चौपई' में रूपमंजरी का राजहंस के साथ विवाह, स्वयंवर में आमंत्रित अनेक राजकुमारों की स्पर्द्धा में ही किया गया। स्वयंवर में आये प्रत्येक राजा या राजकुमार के गुणों का बखान रूपमंजरी की सखी उसके सामने करती है।

बहुपत्नी-प्रथा समाज में हेय दृष्टि से नहीं देखी जाती थी। 'ढोला मारवणी चौपई' में उसके माता-पिता ढोला का दूसरा विवाह मालवणी के साथ इसलिए कर देते हैं कि उसकी प्रथम ससुराल अत्यन्त दूर थी। माधव के पिता भी अपने पुत्र को दुखी देखकर उसका दूसरा विवाह कर देते हैं। 'भीमसेन हंसराज चौपई' में निःसंतान रानी स्वयं अपने पति को दूसरे विवाह के लिए प्रेरित करती है। तेजसार आठ रानियों का स्वामी है। पुरोहित शंकरदास पुत्र-प्राप्ति के लिए एक-एक कर बत्तीस विवाह करता है। लेकिन वह निस्संतान ही रहा।

कुशललाभ के साहित्य में नायक-नायिकाओं के गुण सौन्दर्य की प्रशंसा के श्रवण मात्र से विवाह के संकल्पयुक्त वर्णन भी उपलब्ध हैं। मदन मंजरी इसी प्रकार भीमसेन के सौन्दर्य का वर्णन सुनकर उसके साथ ही विवाह करने का संकल्प लेती है।

अन्तर्जातीय विवाहों को काव्य में प्रोत्साहन दिया गया है। तेजसार विजय-श्री, एणामुखी आदि व्यंतर और यक्ष-कन्याओं का वरण करता है। अगड़दत्त श्रेष्ठि-कन्या मदनमंजरी से विवाह करता है। माधव ब्राह्मण कुमार है—पर जातिपांति और समाज की मर्यादाओं को भंग कर वेश्यापुत्री कामकंदला के साथ परिणय-सूत्र में बंधता है।

वरयात्रा में अनेक वाद्य यन्त्रों के वादन के साथ चतुरंगिणी सेना, चारण, भाट, याचक आदि का वर्णन काव्य में मिलता है।

प्राजापत्य विवाह सामान्यतः ज्योतिषी से मुहूर्त पूछकर किए गए हैं। विवाह की वेदी पर आने से पूर्व कन्या द्वारा स्नान करके नूतन परिधान पहिनना आवश्यक माना गया है। विवाह के अवसर पर 'कोरा चीर' पहनने का उल्लेख शिलारूप कंदला के साथ माधव के विवाह में हुआ है। पुरोहित अग्नि की साक्षी में वधू की हथेली में मेंहदी रखकर वर की हथेली से हथलेवा जुड़ाता है। संस्कार के सम्पन्न हो जाने पर हथलेवा छुड़ाने हेतु परिवार के सदस्य एवं उपस्थित सगे-संबंधी वस्त्राभूषण, हाथी, घोड़े, दास-दासी, धन-सम्पत्ति और गाँव तक भेंट में देते हैं।

ऐसा प्रतीत होता है कि विवाह संस्कार के उपरान्त वर कुछ दिनों तक अपनी ससुराल में ही रहता था। उसके पश्चात् ही उसे विदाई दी जाती थी। कन्या की विदाई के समय उसके माता-पिता कन्या को अपने पितृकुल और श्वसुरकुल की मर्यादा के अनुकूल, आचरण करने तथा सास-ससुर, देवरानी, जेठानी, ननद आदि को पूरा सम्मान देने की शिक्षा देते थे।

श्वसुरालय (ससुराल) में प्रथमबार प्रवेश की वेला में वधू का गाजे-बाजे से स्वागत किया जाता था। उसके आगमन पर बधावे (मंगल गीत) गाये जाते थे। बहू की मुंह-दिखाई के उत्सव में भी सास-ससुर और परिवार के बड़े-बूढ़े प्रभूत भेंट दिया करते थे। वर-वधू की प्रथम मिलन रात्रि को सुहागरात की संज्ञा दी गयी है।

वह भी एक उत्सव के रूप में ही सम्पन्न की जाती थी।

नारी की सामाजिक स्थिति के दर्शन भी कवि के कथा-काव्यों में अच्छी तरह हो जाते हैं। नारी पति पर अपना पूरा स्वत्व मानती थी। पति के जीवन में किसी दूसरी नारी के दखल को वह सहन नहीं कर सकती थी। नारी के स्वकीय प्रेम की प्रगाढ़ता के दर्शन हमें मालवणी द्वारा ढोला को मारवणी के पास जाने में खड़ी की गयी बाधाओं और कामकंदला द्वारा माधव को पाने के लिए झेले गये कष्टों द्वारा होता है। 'तेजसार रास' में विजयश्री द्वारा अपने प्रिय की खोज में दर-दर भटकने तथा मदनमंजरी द्वारा अपनी इच्छा के विरुद्ध माता-पिता द्वारा किए गये अन्य पुरुष के साथ विवाह के निर्णय की अवहेलना में भी उनके प्रगाढ़ प्रेम के दर्शन होते हैं।

पटरानी का पद सर्वोच्च माना जाता था। राज्य का उत्तराधिकारी भी पटरानी का पुत्र ही हो सकता था, इसीलिए राजकुमारियाँ विवाह से पूर्व स्वयं को पटरानी के पद पर प्रतिष्ठित करने की शर्त लगाती थीं।

शील और सतीत्व नारी के प्रमुख गुण माने जाते थे। इन्हीं के कारण समाज में वे सम्मान की दृष्टि से देखी जाती थीं। कन्याओं को अपने पति के चयन की स्वतन्त्रता थी। माता-पिता इस विषय में पुत्री की इच्छा का पूरा सम्मान करते थे।

नारी में वात्सल्य भावना का आधिक्य होता था। उमा देवड़ी, और एणामुखी द्वारा व्यक्त अपनी पुत्रियों के सुखी जीवन की चिन्ता इसका प्रमाण है। कन्या के विवाह में इसी भावना से प्रेरित होकर दहेज में दास-दासियाँ भी देने के प्रमाण प्रभूत मात्रा में इन काव्यों में उपलब्ध हैं। उमा देवड़ी के विवाह में दहेज में दीप-धारणी दासी दी गयी। मारवणी के विवाह में पचास दासियाँ दहेज में प्राप्त हुईं। नारी के रूप-सौंदर्य से आकर्षित पुरुष उनके अपहरण की चेष्टा भी करते थे। पति की मृत्यु पर स्त्रियाँ सती होती थीं। पर यह अनिवार्य नियम नहीं था।

समाज में परदा प्रथा के प्रचलन के प्रमाण भी काव्यों में उपलब्ध हैं। रानियाँ रनिवासों में रहती थीं। अन्तःपुर में अन्य पुरुष का प्रवेश वर्जित हुआ करता था। स्वच्छन्द विचरण में विश्वास रखने वाली युवतियों के उदाहरण भी काव्यों में कम नहीं हैं।

वेश्या समाज का एक अनिवार्य अंग थी। उनका पेशा नाच, गान और पुरुषों की काम-वासना की तृप्ति करना था। लेकिन सतीत्व का पालन करने वाली वेश्याएँ भी समाज में थीं। उन्हें अपने मार्ग पर चलने में अनेक कष्टों का सामना करना पड़ता था। अपनी प्रेम-परीक्षा में खरी उतरने पर त्याग और तपस्या का उन्हें फल मिलता था। राजा उनके प्रति न्याय करके वांछित व्यक्ति से उन्हें विवाह की अनुमति दे देता था। पुष्पावती नगरी का वर्णन करते हुए कुशललाभ ने रनिवास

में सोलह सौ रानियों और नगर में छह सौ वेश्याओं की संख्या का उल्लेख किया है तो विक्रमादित्य जैसे धर्मात्मा राजा की राजधानी उज्जैन में भी उनकी संख्या 6000 बताई है। पुरुषों के चरित्र का पता लगाने के लिए भी राजा वेश्याओं का उपयोग करता था। विक्रमादित्य माधव के प्रेम की परीक्षा भोगविलासिनी नामक वेश्या के माध्यम से लेता है। अगड़दत्त रास से भी वेश्याओं के अस्तित्व का पता चलता है।

राज दरबारों में कलाकारों को वस्त्राभूषण और लाख पसाव देकर सम्मानित किया जाता था। इस आशय के उल्लेख ढोला मारवणी चौपई और तेजसार रास में मिलते हैं। राजा चारण, भाट, खवास आदि को भी पुरस्कृत कर उनका मान बढ़ाता था। मारू के याचकों (ढाढियों) को विदाई के समय दी गयी भेंट और उसी प्रकार राजा विक्रमादित्य द्वारा प्रेम की परीक्षा में उत्तीर्ण हुए माधव को ग्राम, नगर, भूमि, प्रासाद और अपार द्रव्य की भेंट इसके प्रत्यक्ष प्रमाण हैं।

राज-व्यवस्था में गौ, ब्राह्मण, स्त्री, बालक और तपस्वी साधु-संन्यासियों का वध सर्वथा निषिद्ध था। लोग पूर्वजन्म में विश्वास करते थे। कुशललाभ के प्रायः सभी कथा-काव्यों में इससे संबंधित प्रसंग प्राप्त हैं। व्यक्तियों के जीवन में आये कष्टों का कारण पूर्व जन्म के कर्मों को ठहराया जाता था।

कुशललाभ के साहित्य में अंग-स्फुरण, स्वप्न में वांछित वस्तु का दर्शन, छींक, पशु-पक्षियों का स्वर, उनके द्वारा मार्ग-विरोध या रास्ता काटना, स्थान विशेष में उनके दर्शन के शुभाशुभ शकुन आदि का वर्णन भी यथाप्रसंग किया गया है जो लोक विश्वास में प्रचलित थे। तंत्रमंत्रादि पर भी लोगों को पूर्ण आस्था थी। अभिमंत्रित जल के पान या फल के भक्षण से मनोवांछित सन्तान की प्राप्ति में भी लोगों का विश्वास था। मारण, मोहन, उच्चाटन, वशीकरण, सैन्य-स्तंभन, रूप परिवर्तन और विष, चिकित्सा भी मंत्र शक्ति के वश की बात मानी जाती थी। श्रेष्ठ वर की प्राप्ति के लिए कन्याएँ देवी की पूजा करके वरदान माँगती थीं।

भूत, प्रेत, डाकिनी, शाकिनी, सिकोतरी, राक्षसी, यक्ष, यक्षी और व्यंतरी जैसी अलौकिक शक्तियों के अस्तित्व में भी लोगों का विश्वास था। इनसे रक्षा के लिए तन्त्र-मन्त्र का आश्रय लिया जाता था।

रूप-परिवर्तन, अदृश्य होने या खेचरी जैसी विद्याओं की प्राप्ति के अनेक उदाहरण कुशललाभ के काव्यों में उपलब्ध हैं।

ज्योतिष और भविष्यफल के पूर्व-ज्ञान में तत्कालीन समाज के लोगों की आस्था थी। ज्योतिषियों का इसी कारण बहुत सम्मान था। आकाशवाणी द्वारा भी भविष्यवाणियाँ हो सकती हैं, ऐसा विश्वास व्याप्त था।

प्रायश्चित्त के रूप में आत्मघात और आत्मदाह जैसी घटनाएँ समाज में प्रचलित रही होंगी। प्रेमी या प्रेमिका के देहावसान से दुःखी होकर, संकल्पित

प्रतिज्ञा की पूर्ति न होने पर, वांछित व्यक्ति को वर या वधू के रूप में प्राप्त न कर पाने पर, या प्रेमी से अल्पकालीन विछोह की स्थिति में भी लोग संतुलन खोकर आत्महत्या के लिए प्रेरित हो जाते थे।

साधु-सन्तों के प्रति जनसाधारण में सम्मान की भावना थी। लोगों में विश्वास था कि साधु अपने भक्तों की रक्षा करते हैं। कथाओं में प्रायः जैन मुनियों का उल्लेख हुआ है, जिनके आगमन पर नगर में घर-घर मंगल गीत गाये जाते थे और स्त्री-पुरुष सामूहिक रूप से प्रभु की वन्दना करने के लिए जाते थे। राजा स्वयं मुनियों के दर्शनार्थ उनके आश्रम पर जाया करते थे। साधु सत्यवक्ता, निष्कपट और निस्पृही होते थे। लोग उनसे पूर्वजन्म और भविष्य की बातें जानने को उत्सुक रहते थे।

राजा और राजकुमार या कथा के नायक इन मुनियों का उपदेश सुनकर वैराग्य धारण कर लेते थे और भावी जीवन को सद्कार्यों से सफल बना मोक्ष की प्राप्ति करते थे। अवधूतों के आगमन पर उन्हें आदर सहित आमंत्रित कर भोजन कराया जाता था। उनकी सेवा और रक्षा में वे सदा तत्पर रहते थे। आकाशचारी मुनियों का उल्लेख भी 'भीमसेन हंसराज चौपई' में आया है। गुरु के प्रति लोगों के हृदय में समादर की भावना रहती थी। नगर में आगमन पर राजा और राजकुमार उनकी वन्दना करने के लिए सामने जाते थे।

कुशललाभ के साहित्य में वर्णित समाज उच्च-स्तरीय है। राजा के आवासों का उल्लेख यद्यपि बहुत ही कम हुआ है। पर जो वर्णन किया गया है, उससे राजाओं के विशाल राज-प्रासादों में निवास की जानकारी मिलती है, जिनमें भोग विलास की सभी सामग्री उपलब्ध होती थी। ढोला के महल को 'सात भूमि मन्दिर उतुंग' या सतमंज़िला कहा है, जिसमें छोह-पंक और कांच से शोभावृद्धि की गयी थी। गवाक्ष चन्दन के बनाये जाते थे, जिनमें रत्नों और मोतियों से जटित झूमकें लगे रहते थे। स्वर्ण निर्मित सुन्दर आवासों का वर्णन भी मिलता है जिनमें चोआ, चन्दन, कपूर, केसर, धूप की सुगन्धि व्याप्त रहती थी।

नगरों का विस्तार नौ या बारह योजन तक का कहा गया है। नगर, कूप, वापी, सरोवर, वन, गढ़, मन्दिर आदि से युक्त होते थे। राज-प्रासादों में पंचवाद्य सदा बजते रहते थे। नगर में स्थित विस्तृत उपवनों में नायक-नायिकाएँ विहार हेतु निकलते थे। प्रजा के हितार्थ राजा ऐसे सुन्दर वनों, उपवनों का निर्माण करते थे। पर्वोत्सवों पर राजा स्वयं अपने हाथी घोड़े, सैन्य, अन्तःपुर तथा मित्र-मण्डली और संगीत तथा नृत्य-विशारदों सहित वनों में सरोवरों के समीप बने प्रासादों में निवास करते थे। घरों में आँगन रखे जाते थे। पशुओं के लिए अलग स्थान थे। मन्दिरों के निर्माण के उल्लेख भी मिलते हैं।

राजसी परिवारों में अन्त्येष्टि संस्कार के समय अगर और चन्दन का प्रयोग

किया जाता था।

जैन समाज अपनी अर्जित कमाई का अधिकांश भाग धार्मिक यात्राओं, संघों पर व्यय करता था। यह जैन समाज का आवश्यक अंग था। ये लोग विविध प्रकार के पकवानों में अधिक रुचि रखते थे। समाज में ताम्बूल सेवन का प्रचलन था।

काव्य-ग्रन्थों से स्त्री-पुरुषों के वस्त्राभूषणों का भी पता चलता है। पुरुषों के वस्त्रों में पगड़ी (वीटुली) का विशेष उल्लेख हुआ है। धोती, बागा, कम्बल, मोजड़ी, का भी उल्लेख हुआ है। स्त्रियों के वस्त्रों में हीर चीर, सोवनपट, घाघरा, दिखणी चीर, अनुपम चीर, कंचुकी, पटकूल, झूल और साड़ी के नाम मिलते हैं। पूरे परिधान के लिए 'वेस' शब्द का प्रयोग हुआ है। कंवल का प्रयोग मारवाड़ में ओढ़ने और पहनने दोनों ही कामों के लिए होता रहा प्रतीत होता है। विवाह के अवसर पर कोरा चीर (बिना धुला वस्त्र) पहिनाया जाता था। नर्तकियाँ नृत्य के समय रेशमी दुपट्टा पहिनती थीं। विधवा स्त्रियों की वेशभूषा सधवाओं से भिन्न होती थीं।

स्त्रियों के षोडश शृंगारों में उबटन, स्नान, केश-विन्यास, पान, अंजन, अलक्तक, पुष्पहार, तिलक, आभूषण, गंध-लेपन आदि का उल्लेख मिलता है। कुशललाभ के साहित्य की नारी रतन-जड़ित बहिरखा, सीसफूल, एकावल, रखड़ी, चूड़ियाँ, मेखला, नवसरहार, कंकण, नेउर, करधनी, सोंहली, नकफूली, कुंडल, मोती, पायल, झाँझर, आदि आभूषणों का प्रयोग करती हैं। राजा लोग भी आभूषणों का प्रयोग करते थे। ईडर के आभूषण और दक्षिण के चीर लोकप्रिय थे।

स्त्रियाँ केसर और चंदन का, कुसुम तथा कपूर का शरीर पर लेप करती थीं। आँखों में अंजन और काजल और हथेलियों के सौन्दर्य वर्द्धन के लिए आरक्त रंग का उपयोग होता था। अधर तांबूल से रँगे जाते थे। शरीर पर सुगंधित चंपा आदि के तेल का मर्दन तथा भोजन के उपरान्त गंध-द्रव्य, फूल, मृगमद, चोवा, चंदन के उपयोग का उल्लेख हुआ है। ललाट पर तिलक लगाया जाता था।

भोज्य-पदार्थों में भुरट और बाजरी के उपयोग का उल्लेख 'ढोला मारवणी री चौपई' में हुआ है। भुरट अकाल की अवस्था में ही खाया जाता था। सामंत वर्ग सुरा का प्रभूत प्रयोग करता था। सुरापान के लिए 'छाक' शब्द प्रचलित था।

मनोविनोद के साधनों में आखेट, जलक्रीड़ा, नृत्य, संगीत विद्या-विलास (प्रहेलिका आदि), नाटक आदि प्रमुख थे। वीणा वादन, चर्चरी नृत्य, प्रहेलिका, गाहा, गूढा, गीत, कथा-वार्ता का भी उल्लेख हुआ है। देशाटन को भी मनोविनोद के साधनों में परिगणित किया गया है।

समाज उत्सव प्रिय था। सन्तानोत्पत्ति के अवसर पर बड़े उत्सवों का आयोजन किया जाता था। विवाह और धार्मिक उत्सव भी बड़े धूम-धाम से सम्पन्न किये जाते थे। होली, श्रावणी तीज, दशहरा आदि पर्वों का उल्लेख ढोला मारवणी चौपई में हुआ है। श्रावणी तीज और होली के वासन्तिक पर्व पर काव्यों में नायिकाओं को अपने नायक की प्रतीक्षा करते दिखाया गया है। वासन्तिक पर्व के अवसर पर प्रियतम के दूर रहने पर नायिका द्वारा होली की झाळ में कूद मरने तक की स्थिति भी प्रदर्शित की गयी है।

कुशललाभ के साहित्य में तत्कालीन राजविलास और जैन समाज की सम्पन्नता के भी दर्शन सम्यक् रूप से होते हैं। वहाँ एक ओर अकूत अन्न धन से खेलनेवाला समाज है तो दूसरी ओर उनसे दान, भेंट, उपहार आदि की कामना करने वाला समाज भी। सम्पन्न व्यक्ति याचकों को मुक्तहस्त दान देता है। कला-कौशल पर मुग्ध कामसेन माधव को अटूट धन सम्पत्ति से सम्मानित करता है। सोमशाह-जैसा सेठ विशाल धार्मिक संघ का आयोजन करता है। पुष्पावती, कामावती, उज्जैनी, कांतिनगरी, वाराणसी जैसे विशाल नगर देश की समृद्धि की सूचना देते हैं।

वैश्य-वर्ग व्यापार से अपार धन अर्जित करता है। घोड़े, ऊँट, रत्नाभूषण, वस्त्रादिक के व्यापार हेतु वे देशाटन करते दिखाये गये हैं। श्रेष्ठि-कुमारों को अनेक संकटों का सामना करते हुए धन-कमाने हेतु समुद्र पार की विदेश यात्रा करते भी दिखाया गया है। तेजसार रास में चौरासी प्रकार के बाजारों (चौहटों) का उल्लेख हुआ है। मुलतानी घोड़ों तथा बड़ी थूही के कच्छी ऊँटों की अधिक माँग थी, ऐसा ज्ञात होता है।

अकाल पड़ने पर राजा लोग एक-दूसरे की सहायता करते थे। ऐसी स्थिति में प्रजा-सहित वे राज छोड़कर निकल जाते थे।

समाज में राजा का सर्वोच्च स्थान होता था। वह प्रायः निरंकुश होता था। किसी व्यक्ति द्वारा राज्य के अहित को देखते हुए उसे राज्य से बहिष्कृत कर देना एक सामान्य-सी बात थी। राजा अपने राज्य के किसी भाग को राजकुमारियों के दहेज में भी दे सकता था। राजा अपने स्वार्थ के लिए अपने सम्बन्धियों की हत्या भी करवा देता था। राजा के सम्मुख अपना दुख-दर्द सुनाने के लिए प्रत्येक व्यक्ति स्वतन्त्र था— और उसके कष्ट को समझना राजा का कर्त्तव्य था। राजसभा में भी लोग अपनी समस्याएँ रखते थे। अपराधियों को समुचित दण्ड दिया जाता था। राजा अपने राज्य में प्रजा के कष्ट-निवारणार्थ हर संभव प्रयत्न करता था।

चोर-डाकुओं का पता लगाने, विपक्ष की सूचना प्राप्त करने या अन्य किसी जानकारी के लिए गुप्तचरों की व्यवस्था थी। इस कार्य के लिए चोर, जुआरी,

वेश्या, खवास, मित्र या किसी विश्वसनीय व्यक्ति का सहयोग भी लिया जाता था। भोग विलासिनी वेश्या, आगिया वेताल, कवडिया जुआरी, खवास आदि के उल्लेख इन काव्यों में गुप्तचरों के रूप में आते हैं।

राजा अपने प्रधानों पर पूर्ण विश्वास रखते थे। राज्य की सभी समस्याओं के निराकरणार्थ उनकी सम्मति ली जाती थी। उनकी सम्मति पर राजा युवराज तक को गृह त्याग के लिए बाध्य कर देते थे।

कुशललाभ के काव्य ग्रन्थों से ज्ञात होता है कि राजाओं के पास विशाल सेनाएँ होती थीं, जिनमें हाथी, घोड़े, रथ और पैदल सैनिक होते थे। सेनाओं के प्रत्यक्ष संघर्ष की अपेक्षा कूटनीतिक युद्ध का संभवतः अधिक महत्त्व माना जाता था। सेना राज्य की सुरक्षा के लिए होती थी। सेना का स्थान नगर के पास रहता था। युद्ध के निवारण के लिए राजा दण्डस्वरूप विरोधी को ग्रामादि देने को भी तत्पर रहते थे।

व्यर्थ का खून-ख़राबा उन्हें पसंद नहीं था, लेकिन कभी-कभी छोटी-छोटी बातों के लिए भी युद्ध छिड़ जाते थे। युद्ध के प्रमुख कारण कोई सुन्दरी, राज्य विस्तार की इच्छा या प्रतिशोध की भावना हुआ करती थी। राजकुमारियों को युद्ध लड़कर प्राप्त करने पर, राज प्राप्ति की भविष्यवाणियाँ भी ज्योतिषी करते थे। युद्ध में तलवार और भाले ही प्रमुख शस्त्र थे। राजा बंदियों का दमन कर प्रजा में अमन-चैन बनाये रखता था।

राज परिवार में पुरोहित को अत्यधिक सम्मान प्राप्त था। वह राजा तथा अन्तःपुर के धार्मिक कृत्यों को सम्पन्न करता था। यदाकदा पुरोहित भी अकूत ऐश्वर्य के स्वामी भी होते थे। माधव ऐसे ही पुरोहित का पालित पुत्र था।

चारण भाट राजा की प्रशस्ति (विरुदावली) का गान करते थे। युद्ध के समय उन्हें शौर्य प्रदर्शन हेतु उत्साहित करना उनका प्रमुख काम था। भाट राजाओं को विवाह योग्य सुन्दर कन्याओं की जानकारी भी देते थे। अपने स्वामी की स्वार्थ-पूर्ति में भी वे साधक बन जाते थे। ढाढियों को संदेश प्रेषण हेतु 'ढोला मारवणी चौपई' में उपयुक्त पात्र समझा गया है।

राजद्वार पर नियुक्त प्रतिहारी या द्वारपाल राज परिवार और राज्यकोष की रक्षा करते थे। स्त्रियाँ भी द्वाररक्षक के रूप में नियुक्त की जाती थीं। उनके हाथ में उत्कृष्ट कोटि के लोहे से बनी तलवार कंकलोह रहती थी।

प्रजा का हाल जानने के लिए राजा स्वयं वेश परिवर्तित कर नगर-भ्रमण करता था। इस कार्य में वह अपने अन्तरंग मित्रों का सहयोग भी लेता था। राजा की निस्संतान मृत्यु हो जाने पर गर्भवती रानी से उत्पन्न पुत्र राज्य का अधिकारी बनता था—अन्यथा भानजे को सिंहासन पर बैठाया जाता था।

शिक्षा

इस काल में शिक्षा गुरुकुल में दी जाती थी। गुरु के आश्रम में कई विद्यार्थी एक साथ शिक्षा ग्रहण करते थे। वे गुरु के लिए जंगल से लकड़ी, घास आदि भी इकट्ठा करके लाने का काम करते थे। बदले में उन्हें शिक्षा और अन्न मिलता था। तत्कालीन समाज में कन्या को भी समुचित शिक्षा दी जाती थी। राजपुत्रों की शिक्षा का प्रबन्ध प्राय: उनके राज-प्रासादों में ही किया जाता था। स्त्रियों को ललित कलाओं की शिक्षा दी जाती थी। वे नृत्य, संगीत, काव्यादि कला में निपुण हुआ करती थीं। नायिकाओं को कला की शिक्षा देकर चौसठ कलाओं में निष्णात बनाया जाता था। संगीत और नाटक का अभ्यास बाल्यावस्था में ही प्रारंभ कर दिया जाता था। यहाँ विद्याएँ 14, लक्षण 32 और कलाएँ 72 मानी गयी थीं। राजकुमारों की शिक्षा के लिए जैन साधु नियुक्त किये जाते थे। उच्च शिक्षा के लिए राजा, सामन्त, आदि अपनी सन्तान को दूरस्थ देशों में भी भेजा करते थे। बनारस, चंपापुर आदि शिक्षा के प्रमुख केन्द्र थे।

वास्तु-कला उन्नत अवस्था में थी। व्यंतरियाँ गढ़, सरोवर, मंदिर, कूप, वापी, वन, देहरा, चौरासी चोहट्टा आदि से युक्त नगरों का निर्माण करने में दक्ष कही गयी हैं।

कुशललाभ रचित कथा साहित्य में हमें जैन धर्म का विस्तृत वर्णन मिलता है। जैन साधु सुन्दर शिक्षा-प्रद कथाओं का प्रणयन कर उनके माध्यम से जैन धर्म की शिक्षाओं का प्रसार करते थे।

इन काव्य ग्रंथों में हमें कवि के भौगोलिक, वानस्पतिक और प्राणी-जगत सम्बन्धी ज्ञान की भी जानकारी मिलती है। इन कृतियों में यत्र-तत्र गंगा, क्षिप्रा, आबू, सोवनगिरि, शत्रुंजय-गिरि, सिद्धाचल, पुण्डरगिर, वैताढ्य-पर्वत, पुष्कर, मानसरोवर, ललित सरोवर, सुख-सागर, पश्चिमवन, दक्षिणवन, वनखण्ड, नंदन वन, नव-द्रोण नामक कूप आदि का उल्लेख हुआ है। इसी प्रकार आम्र, कदली, कनेर, चंपा, वट, जाल, आक, चन्दन, केर, खाखरा, शिरीष, खजूर, लवंग, तिल, सेवार, नागरवेल, गुणवेल; कंटाला, फोग आदि वृक्ष, पादप, लता, वेलियों के नाम मिलते हैं। प्राणियों में मोर, क्रौंच, पपीहा, सारस, चकोर, चकोरी, हंस, कोयल, तोता, खजन आदि पक्षियों तथा मछली, मेंढक, भीषणा साँप, भ्रमर, टिड्डी, वरी, आदि कीट पतंगों और सरीसृपों के नाम भी मिलते हैं।

प्रमुख रचनाओं से उद्धरण

माधवानल काम कंदला चौपई

सोलह श्रृंगार वर्णन

कामकंदला नाटक करइ, माधव मनि अपछर संभरइ।
आप पासि बइसारिउ भूपि, निरखइ कामकंदला रूपि ।। 193 ।।
चंपक वर्ण सकोमल अंग, मस्तकवेणी जाणि भुयंग।
अधर रंग परवाली वेलि, गयवर हंस हरावइ गेलि ।। 194 ।।
नाक जिसी दीवा नी सिखा, बांहि रतन जडित बहिरखा।
सीसफूल सोवन राखड़ी, कंचनमयि घड़ि रतने जडी ।। 195 ।।
गलि एकाउलि नवसर हार, कंकण नेउर रूणझुणकार।
मुख जाणी पूनिम नूं चंद, अधर वचन, अमृतमय बिंद ।। 196 ।।
पीन पयोधर कठिन उतंग, लोचन जाणि त्रस्त कुरंग।
भालि तिलक, सिरि वेणी दंड, भमह वंक मनमथ कोदंड ।। 197 ।।
कोमल सरल तरल अंगुली, दंत जिस्या दाडिमनी कुली।
खलकइ चूडी सोवन तणी, क्षुद्रघंटिका सोहामणी ।। 198 ।।
केसरिसिंह जिस्यु कटि लंक, रतन जड़ित कटि मेखल बंक।
जंघ जुयल करि कदली थंभ, अभिनव रूपिइ रमणी रंभ ।। 199 ।।
आंगइ चंदन केसर खोलि, अधर दसण रंगित तंबोळ।
अंजन-सिउ अंजित आंखड़ी, जाणि विकच कमल पांखड़ी ।। 200 ।।
सज्या तिणिई सोलह सिणगार, नाटिक अवसरि हरख अपार।
तउ निरखइ माधव वलि वली, लागउ प्रेम विरह व्याकुली ।। 201 ।।

ढोला मारवणी चौपई

सकल सुरासुर सामिनी, सुणि माता सरसत्ति।
विनय करीनइ वीनवुं, मुझ दिउ अविरल मत्ति ।। 1 ।।
जोता नवरस एणि युगि, सविहुं धुरि सिणगार।
रागइ सुरनर रंजीयइ, अबला तसु आधार ।। 2 ।।
वचन विलास विनोद रस, हाव भाव रूति हास।
प्रेम प्रीति संभोग रस, ए सिणगार अवास ।। 3 ।।
गाहा गूढा गीत गुण, कवित कथा कल्लोल।
चतुर तणा चित रंजवण, कहइ कवि कल्लोल ।। 4 ।।

गाहा

मणहर नवरस मंझे, सुंदरि नारीण सरस सम्बन्धा ।
निरुवम कविह ति निवद्धा, सुण तुं सयणा जणा सुगुणा ।। 5 ।।
नलदर नयर नरिंदो, नलराय सुउ सल्लकुमर वरो ।
पिंगल राय सु धूया, वनिता मारवणि वर्णविसु ।। 6 ।।

कवित्त

पाणी-पंथउ पवंग, खंग चंगउ खुरसाणी ।।
विज्ञानगरो वस्त्र, एक विण सुर सिरखाणी ।।
पट्टकूल पट्टणी, देस भोगी धर दक्षण ।
कुंजर कदली खंडि, विप्र तिरुहुती विचक्षण ।।
तिम चन्द्र-वदन चंपक वरण, दंत झबक्कइ दामिनी ।
सारंगनयण संमार इणि, मणहर मारू कामिनी ।। 7।
मुरधर देस मझारि, सयल धण-धन्न-समिद्धउ ।
नामइ पूगल नयर, पुहवि सगलइ परसिद्धउ ।।
राज करइ रमिराह प्रगट पिंगल पृथवीपति ।
प्रतपइ जसु परताप दॉन जलहर जिमि दीपति ।।
देवड़ी नामि उमा धरणि, मारूवणी तसु धू कुमरि ।
चउसठि कला मुंदरि चतुर, कथा तास कहिसुं सुपरि ।। 8 ।।

चौपई

पुंगल नयरी मुरधर देस, निरुपम पिंगल नांम नरेस ।
मारवाड़ नव कोटी धणी, उत्तर सिंध भूम तसु तणी ।। 13 ।।
उणी नगर लोक सुखी वसे, वाव जल चिहुं दिसि दिसे ।
आठ सहस हेवर तसु मिले, पंच सहस पायक दळ भिले ।। 14 ।।
वरस बार में बैठो राज, घरि भाजे संभली आवाज ।
त्रिण वरस मांहे निज प्राण, सिंध साधि मनावी आंण ।। 15 ।।
पनर वरस पाठवियो राजान, रूपवंत गति राय समान ।
पाळें राज सुखे आफणी, भूपत चढ्यो आहडइ भणी ।। 16 ।।

चौपई

पाणि ग्रहण तणो परिआण, मांड्यो वेहुं सुपति मंडाण ।
मोहोछव तोरण मंगल च्यार, वीध वधावा तणी अति वार ।। 183 ।।
सुभवेला सुभ दिन सुभ घड़ी त्रेवड़ी लगन तणी त्रेवड़ी ।
वड री मांडी मंगल च्यार, जांन मांनवी मिल्या अपार ।। 184 ।।

माय ताय बिहुं वंधि फांटि, परणाव्या पुहकर तीरथ कांठि।
धवल मंगल गीत धुनि किआ, साल्हकुअर मारू परणिआ ।। 185 ।।
अरथ गरथ खरचिया अपार, बालक अछे बेन्हेइ कुमार।
थांभ नाम सुविसतर लिषें, आया गया सहु यो लखे ।। 186 ।।
इणी प्रस्तावे साल्ह कुमार, मालवणी सूं प्रीत अपार।
दोइ, पुहर ऊनाला तणें, पोढ्यो मंदिर आपणें ।। 260 ।।
सेजे मालवणी संघात, विग प्रीत ई सूं ए वात।
तिसइ माता चंपावती, अलगा थी दीठी आवती ।। 261 ।।
ते देखी लाजिओ कुमार, कपट निद्रा करी तिवार।
माता आवी ऊभी रही, जाणूं सुत पोढ्यो सही ।। 262 ।।
बहु किन्हे सासू एक वार, आरीसो मांग्यो अपार।
देतां बहु लगाई वार, आण्यो मन मांहे अहंकार ।। 263 ।।
सासू बहु प्रते ऊचरे, कांई बडाई इतरी करे।
जो मारवणी अलगी रही, तो तू करे बडाई सही ।। 264 ।।

स्थूलि भद्र छत्तीसी

सारद सरद चन्द्र करि निर्मल,
(ताके) चरण कमल चितलाय कहूं।
सुणत संतोष हुवै श्रवणां कूं,
नागर चतुर सुनउ चित चाय कहूं ।।
कुशललाभ वुल्लति आनन्द भरि,
सुगुरू पासादि परम सुख पाय कहूं।
करिहूं थूलभद्र छत्तीसी,
अति सुन्दर पद-बन्ध बनाय कहूं ।। 1 ।।

छन्द रोमकी

मंजन अंजन कीना, सुधि सब तन भीना,
भ्रमर सारंभ लीना, सोहइ सिर रक्खरी।
कुंडल कपोल चोल, वदन तबोल रोल,
कुच झकझोर पोर, सारइ तन्वी सक्खरी ।।
कोमल कणयरि कंब, अधर विद्रुम विंब,
पुहप वेणी प्रलंब, जइसी चित्र पुत्तरी ।।
कुशल सुमति जागइ, कोस्या रिखिराय आगइ,
दूर ही थी पांइ लागइ, मांनु सरग थी ऊतरी ।।

आवंतइ पावस कालि, रह्यो कोम्या चित्रसालि,
आहार जीमइ रसालि, जाण्यो जी पूगो मदन्न ।
तरुणी पेखतां तन्न, काम मद मोह्यो मन्न,
प्रेम तनु ज्यो लावइ धन्न, अहमो सांभलइ वयन्न ।
गयोजी नेपाल देस, सहनो दुःख कलेस,
मिल्यो जी दाता नरेस, दीन्हो कांमल रतन्न ।
आणी सोई गिया दीन, पूछती सरीर मीन,
कहउ रिषी कहु कीन, अहसो राणिह तन्न ॥ 35 ॥

थंभण पार्श्वनाथ स्तवन

त्रोटक

प्रभु प्रणमूं रे पास जिणेसर थंभणो ।
गुण गाइवा रे मुझ मन उलसइ घणो ॥
ग्यानी विण रे एहनी आदि न को लहे ।
तो ही पिण रे गीतारथ गुरु इम कहे ॥ 1 ॥
इम कहे शास्त्र तणे प्रमाणे राम दशरथ नंदनो ।
वंधवा पाजे सीत काजे, समुद्र तट एकणि बनो ।
तिहां रह्या वांधव राम लक्ष्मण साथ सेना अति घणी ।
प्रासाद एक उत्तंग तोरण थापना जिनवर तणी ॥ 2 ॥
तिहां मूरति रे मूल गम्भीर पास नी ।
मन वंछित रे आशा पूरे आम नी ।
ते राजा रे दिन प्रति पूजा साचवै ।
कर जोडी रे वे बंधव इम वीनवै ॥ 3 ॥
वीनवै सांमी तुम प्रसादे जलधिजल थंभे किमै ।
तो पाज बांधूं लंक साधू इम कहि प्रभ पाय नमै ।
वहु पूज करतां ध्यान धरतां सात मास थया जिसै ।
नव दिवस अधिका थया ऊपरि जलधिजल थंभ्यो तिसै ॥ 4 ॥
ए अतिशय रे अचिरज पेखी प्रभु तणो ।
तिण कारण रे नाम दियो तसु थंभणो ॥
जल ऊपर रे पाज करी पाथर तणी ।
गढ लंका रे साधेवा सीता भणी ॥ 5 ॥
गढ लंक साधी सीत आणी, तेण वनि आव्या वली ।
दिन आठ, अठाई महोच्छव किया मन पूगी रली ॥

ते राम राजा शुद्ध श्रावक विनीता नगरी वसै।
वीसमा जिणवर तणै वारे इम कहि गुरु उपदिसै ।। 6 ।।

कलश

इम स्तव्यो थंभण पास सांमी नयर श्री खंभाइते।
जिम सुगुरु सुमुख सुणीय वांणी शास्त्र आगम सम्मते ।।
ए आदि मूरति सकल सूरति सेवतां सुख पाव ए।
भल भाव आणी लाभ जाणी कुशललाभ पयंप ए ।। 38 ।।

भीमसेन राजहंस चौपई

(बाग तड़ाग वर्णन)

सरस भूमि सुभ दिन सुभवार, वाड़ी मांडी अति विस्तार।
वाव्या विविध अपूरव त्रिष्प, लघु तरु घणा लता ना लप्प ।। 21 ।।
देस विदेस पठाव्या दूत, पत्र लेइ परदेस पहूत।
भूपति मोटा मोटा भणी, अधिका प्रीति लिखिया पणी ।। 22 ।।
सुंदर सरस वृक्ष जे सार, पहुंचाडे यों इहां अपार।
इणि परि तरुवर आव्या घणा, सोहइ ते वन सोहामणा ।। 23 ।।
सरस सदाफल नइ सहकार, अगर असोक अरजन्न अनार।
करणी केलि कपूर कदंब, जातीफल जामूं जलजंब ।। 24 ।।
पारजाति पदमण पुंन्नाग, सूंकडि सिमी सिव नइ साग।
राइण रोहीड़ा रोहीस, वेड़ सवेड़ वरुण नइ वांस ।। 25 ।।
श्रीफल सोपारी सुरसाल, तगर तिमर तिंदुक नइ ताल।
नीम्बू निमजा नइ नारिंग, पीपल पारस पील प्रियंग ।। 26 ।।
खयर खलहला खीप खजूर, बकुल विदाम बीजना पूर।
मंडप दाख तणा माहंत, अवर वृक्ष नी जाति अनंत ।। 27 ।।
नागवेलि नइ नील निकुंज, परि परि पसर पुहप ना पुंज।
रूड़ा घणा सकल सहि रूख भाजइ जिण आहारइ भूख ।। 28 ।।
दह दिसि भीति पोलि चिहुं दिसइ, वनमालिक तिहां वासो वसइ।
विचि विचि वन मांही अरहट वहइ, लीलइ तरुवर पाणी लहइ ।। 29 ।।
थोडे वरसे थिर जल संग, अनुक्रमि तरुवर थया उतंग।
विचइ सरोवर एक विशाल, घटित पालि सोहइ घड़नाल ।। 30 ।।
निर्मल सीतल सुरभित नीर, तरवर थया सबल तसु तीर।
चक्रवाक सारस चिहुं दिसइ, विविध विहंगम वासो वसइ ।। 31 ।।

मधुकर परिमल लोभइ भमइ, रंगइ नगर लोक तिहां रमइ।
ऊंचो राज योग्य आवासि, एक कराव्यो सरवर पासि॥ 32॥
पदम सरोवर थाप्यो नाम, नंदन वन नामइ अभिराम।
राजा रमइ तिथइ आवासि, विलासइ वांछित भोग विलासि॥ 33॥

जगदम्बा छंद

ओंकार सार अपरंपर, नादभेद निरभेद निरंतर।
सकल सरूप योति सह संकर, नमोनमोनिरंजननाथ निरंतर॥ 1॥
सदा आदि शिव शगति एकसम, आराधक आनंद-अनोपम।
सदगुर कथित साध पद संक्रम, भजिभजि भगत छांडि अंतर-भ्रम॥ 2॥
राजरिद्धि सोभाग रस, महुत मनोहर मत्ति।
परिघल सुपरिपद पांमिई, जु सेविई सगत्ति॥ 3॥
सगति विश्व व्यापक सकल, आदि अनादि अनंत।
त्रिणकालइ तुअ गुण तवुं, भाव सहित भगत्ति॥ 4॥
तव्या लघु-स्तवन नांम तुझ, वीस सहित विस्तार।
करी प्रणांन पुनरपि कहुं, तुझ गुण अनंत अपार॥ 5॥
संकर सिद्ध हूअ सुकवि, पिंगल पुहवि प्रवीण।
तास पटंतर तुच्छतर, हूं मूरिप मतिहीण॥ 6॥
पणि जीहा करिवा पवित, गाऊं तूझ गुण ग्राम।
वागवांणि मुझ अधि वर, नमोनमो तुअ नाम॥ 7॥

छंद

नमो नाद रूपी नमो ज्ञान-रिदा, नमो शंकरी सूत माता नरिंदा।
नमो कौमुदी कार्तिनी चन्द्र कांता, नमो अमृता अन्नदाता अनंता।
नमो लांछिणी गोत्रणी नाद लीणी, नमो वीझवासिणी लंब वीणी।
नमो मंगला मूलधारा मृणाली, नमो नंदिनी नारदी नाभिनाली॥ 9॥
नमो जंगमा योगिनी योगमुद्रा, नमो संभवी सिद्धयाना सुभद्रा।
नमो कालिका कुंभणि वा कुमारी, नमो चेतना चंडिका चक्रधारी॥ 10॥
नमो त्रिपुरा तोतिला आदि तारा, नमो पेत्रणी पेचरी खीर-धारा॥ 11॥
नमो वावनी बहिचरी बुद्धि बाला, नमो मंत्रणी तंत्रणी मेघमाला।
नमो चक्रणी चेतनी आदि चंडी, नमो तापसी वेणि तंत्री त्रिदंडी॥ 12॥
नमो त्रिधरा रूप चंडा त्रिलोगि, नमो मोहरी रूप मोहि मरंगि।
नमो वेद वेदांतरा रूप वेना, नमो जगत त्रि जागु तूं जनेत॥ 45॥

नमो वडवड़ी वात जे जगि विख्याता, नमो ते सहू ताहरा रूप माता।
नमो ए किंकरी चित्त तुझनी अराधै, नमो सगति तुं तेहना काज साधै ।। 46 ।।
नमो सत्य तूं जांणि जे तुज्झ सेवीं, नमो दोहिली वार तूं सार देवी।
नमो रिद्धि पूरिद्धि जे चरण राता, नमो आनंदकारी आदि माता ।। 47 ।।

कलस

इन्द्रादिक सुर असुर, सदा तुझ सेवा सारैं।
स्वर्ग मृत्यु पाताल अचल तुम ची आधारैं।
गिर गुह्वर वर विवर, नगर पुर वर त्रिक चाचर।
आप छंदि आणंद शक्ति खेलैं सचराचर।
शिव सगति युगति खेलि सदा, विविध रूप विश्वेश्वरी ।। 48 ।।
कवि **कुशललाभ** कल्यांण करि, जय जय जय जगदीश्वरी।

शत्रुंजय यात्रा स्तवन

श्री मुखि श्री गुरुजी कहइ, वेसारी श्री संघ।
जात्र करीजइ जुगति सूं, श्री सेत्रुंजय सूंग ।। 10 ।।
प्रागवटि सइ प्रगट, साह्याकुलि सिणगार।
जोगीनाथ जाणियइ, दोसी वड़दातार ।। 11 ।।
जोगी सुत श्री सोमजी, सिव बन्धव जोड़ि अभंग।
जात्र मनोरथ मनि कर्यउ, आणी अति उछरंग ।। 12 ।।
कर जोड़ी गुरु नइ कहइ, अमनइ हरख अपार।
तीरथ जात्रइ जाइसूं, साथइ सहूं परिवार ।। 13 ।।
कंकोरी आदर करी मुकी देस विदेस।
जात्र करेवा आविज्यो, श्री गुरु नइ उपदेस ।। 14 ।।

ढाल-गूड़ राग

मालवी संघ आवी मिल्यउ, बीकानयर नउ आवियउ।
सीरोंही सूरत नउ मिल्यउ, संग मनि भावियउ ।। 15 ।।
संघ चाल्यउ सेत्रुंज भणी, हीयड़इ हरष बहु आणी।
खरतर गच्छ जगि जाणियइ, वंदन धन धन वांणी ।। 16 ।। (आंकणी)
पाटणी संघ राधणपुरउ, मिलियउ संघ खंभाति।
जेसलमेर जालोर नउ, घणउ संघ गुजराति ।। 17 ।।
सोल चमाला वच्छरइ, माघ मासि सुदि पखइ।
दसमी दिनि रविवासरइ, सहुलोक समखइ ।। 18 ।।

संघ सात सई सिजवाली अमी, वहिल विसय नइ वीस।
श्रउठ अउठ सउ ऊंट वहु पोटिया जाकू संघ जगीस ।। 25 ।।
संग भाट भोजिक गुणियण घणा, बोलइ सुजस अपार।
मुनिवर खरतर गच्छना, मिल्या एक सउ वार ।। 26 ।।
त्रिणि सय तीस महातमा, रिपि विसय नइ वीस।
साध नइ वली साधवी आचारिज पचवीस ।। 27 ।।

घण श्रावक घण श्राविका, पाजइ छरिय प्रमाण।
सुखइं हींडइ सहु माणसइं, वाजंत इ नीसांण ।। 28 ।।
सहु असवार सन्नाह सूं, राजपूत सउ होइ।
विसय वत्रीस वहु किया, वउ लावा सोइ ।। 29 ।।

श्री पूज्यवाहण गीत

राग रामगिरी

धर्ममारग उपदेसतां, करतां विधइ विहार रे।
आव्या जी नगर त्रंबावती, श्री संघ हर्ष अपार रे ।। 35 ।।
पूज्य आव्या ते आसा फली, श्रीखरतर गछ गणधार रे।
श्रीजिनचंद सूरी वांदयइ, साथइ साधुपरिवार रे ।। 36 ।। पू०
आगम सूत्र अर्थे भर्या, सुक्रियाण ते सार रे।
चरित्र वखाण्यां अति भला, व्रत पचखाण विस्तार रे ।। 37 ।।
वस्तु अपूरिव बहरवा, मिल्या भक्ति नरनार रे।
विनय करि पूजिनइ वीनवइ, अपउ वस्तु उदार रे ।। 38 ।। पू०
मोटा श्रावक श्राविका, करइ मंडाण अनेक रे।
महोत्सव अधिक प्रभावना, जाणइ विनय विवेक रे ।। 39 ।। पू०
ज्ञान दरसण चारित्र तणा, अमोलक रतन महंत रे।
पुण्य व्यापारी आवी मिल्या, बहुरतां लाभ अनंत रे ।। 40 ।।

राग केदार गौडी

दिन दिन महोत्सव अति घणा, श्रीसंघ भगति सुहाई।
मन शुद्धि श्री गुरु सेवियइ, जिणि सेव्यइ शिव सुख पाई ।। 53 ।।
प्रभु पाटिय चउवीस मइ, श्री पूज्य जिनचन्द सूरि।
उद्योतकारी अभिनवो, उदयो पुण्य अंकूर ।। 54 ।।
शाह श्रावक भंडारी वीरजी, साह रांका नइ गुरु राग।
वर्द्धमान शाह विनयइ घणो, शाह नगजी अधिक सोभाग ।। 55 ।।

शाह वद्दा शाहं पदमसी, शाह देवजी ने जैता शाह।
श्रावक हरखा, हीरजी, भाणजी अधिक उछाह ।। 56 ।।
भंडारी मांडण नइ भगती घणी, शाह जावड़ ने घणा भाव।
शाह मनुआ ने शाह सहजिया, भंडारी अमीउ अधिक उछाह रे ।। 57 ।।
नित मिलइ श्रावक श्रावका, संभलइ पूज्य बखाण।
हियड़इ उलटइ हूलसइ, एम जीव्यो जनम प्रमाण ।। 58 ।।

राग-गुड मल्हार

आव्यो मास असाढ़, झबूके दामिनी रे।
जोवइ प्रियड़ा वाट, सुकोमल कामिनी रे।
चातक मधुरइ सादिकि, प्रिउ ऊचरइ रे।
वरसइ घण वरसात सजल सरवर भरइ रे ।। 61 ।।

पिंगल-सिरोमणि

अथ मंदा क्रांता (अष्टी) छंद

मंदाक्रान्ता विरत कथयं।
मो भनो तात मेखं ।।

यथा

आखा-मुत्ती कर भर दये, साधु अप्यां विधाता।
पुट्ठा थापे जय कहि मुखे, चारणी संत पाता ।।
देवी देवां करनल वरो, देणी सिद्धीय दाता।
मीरां भांजे जय कर भमे, सेवियां आदि माता ।।

अथ मेघविथ्यूरणी छंद

नवो आदे देवी जुत र र गुरु मेघ विथ्यूरणीयं।
अहो सव्वे देवां वर हर, सही राम नामो अमीयं ।।

यथा

सिवं सिद्धां अप्पे अप्प वर, गजो इंद्रियां सो समीयं।
दिवं रात देवं अह निसि जपो, काय वाचा दमीयं।
अजामिल्ला कन्हांतर भवदधी, मोख मा मागणीयं ।।

अथ भ्रमर छप्पय

आकासां धुर रचौ इक, सच्च भ्रमर गुंजार।
भार एक सत भेल करि, संख्या सिव ततसार ।।

अथ हनुमांन वर्णन

यथा

दिन सूरिज होइ दोइ, गिरां गैणांग कियौ गम।
किना नाल गोला झमाल किना अनल सु आगम॥
किना तेज होइ पुंज, किना पंखी ईसरगत।
किना तारका अवध देख, मूक्यौ देवपत॥
किना सरासन हत्थ सिव, अज गव सूं छूट्यौ सही।
किना रूप धर राम मन, जव जव सूं चाल्यौ जिही॥
सुखम सु तम धर सधर, दस रूप दरसाए।
गढ चढ गिरवर गणण, पवल दिस पेठ सुभाए॥
तपन महोदर धमर धूम, प्रति घर घर पेखे।
दहुं दिस सिय हिय हेरि, दरद मंत्रि बहु देखे॥
हणवंत तह मन महि हरख, सिय घर घर महि सोधिया।
भुरज विमर घर घर भमे, कपि कांनन दिस मुंह किया॥

वार्ता

मागधी छंद आदि देनै केइक फेर प्रसिद्ध छन्द छै। सो पूरब दिसी दखिण पछिम देस में जाणणां। मारवाडी मां प्रसिद्ध न छै।

दोहा

भग्गावां नर कुंभ थी, करै कोप श्रीकंत।
तद कोदड हाथें करी, मारकुवां भयमंत॥
देवां इंद्रां दुंदुभी, जैत्र वजाए जोर।
संख कनाल भेरी सघण, घरहरिया वहु-घोर॥
। इति कुम्भ जूद्ध।

अथ मेरू विधि कथनं

प्रश्न

सेस मत्त मांहे सरस, खंड मेर किय रीत।
आचारज रै मत अधिक, करी संपूरण कीत॥

अरहटटा छंद

प्रश्न

प्रस्तारां री पंकति मांहे, लहु गुरु किण किण ठाइ।
एक घटे वण रूप भेद थी, पूरण मेर वताइ॥

अध लेखा, अनुग्या, अवग्या अलंकार

केई तो कवि लेखा अवग्या अनुग्या कहे छै सु नांम भेद छै।
नै अलंकार तो एक हीज छै। नैं कितरां रो मत देखी सुकहो।
ए चिह्न जूवा-जूवा छै-सु कवि हरराज विचारियो ज अलंकार तो
त्रिह्न जुदा जुदा खरा, सु देसांतर पिण एहवा नांम सुणीया नहीं।
तद जांणियो कि जुदा खरा, तरै गुरुजी श्री कुसललाभ था प्रस्न—
कि महाराज आप फुरमावो—एणां तीनां अलंकारा रा नाम
तीन जुदा जुदा सुणिया, नै लखण एकसा हीज मालूम पड़िया,
सो कहीजे, नें अलंकार तो आभूषण कहिया। सर्व सासत्र
रो ग्रहणों छै। जिण विध थी ग्रहणो परिहरि स्त्री पुरुष
सुंदर दीसे, तिण विध थी गीत, कवित्त, दूहो, छंद,
गाथा फूटरी दीसै। महाराज आप फुरमायो सो अलंकार
ग्रंथ आचारज कृत छै, किनां सेस कृत छै, सो कहो।।

उत्तर—दोहा

सेस पिंगल रचियो सरस, अलंकार कृत और।
सुक्राचारिज गुर सरस, तए ठौर ही ठौर।।
वालमीक सुक व्यास विध, सौनिक रिख केइ संत।
अलंकार करता अवर, तवि तवि कथियो तंत।।

वार्ता

इण मांहे छै तैं संसकृत छै सु रसक ग्रंथां रा अंग वांधे। तठा सुं अंग वांधण रो विचार वर्णन ग्रंथ छै, सु तो सरीर छै, नै मांहें नाम-माला सु अस्थि छै, नैं रचना ग्रंथां री सो त्वचा, नेम जाणै सो पिंगल सो जीव छै। नैं अंग अपुंग तो-बीजा घणा छै, नैं अलंकार आभूषण छै। इण विध थी सर्व जांणणा।

अथनारी छंद

कोठा अखर संख्या कर, आदू अंतय एकूं भर।
अस्वागंतय बोले अहि, यो आचारिज भी सो कहि।।

(इति मेर निरूपणं)

वार्ता—किणे ही कविसर कोई कविसर नें पूछियो के प्रस्तारां छंदे वरणं माँह लहु गुर पंकति किण विध थी जाँणोजै, एक एक थी इण ही रीत थी मोनुं समझाय नै कहो। जरे इण विध थी कहीजै—पहिलां पूंछण री रीत कहीं, हमै कहण री रीत छै। ज्यो सगला कविसर समझै जिण वरण थी जितरा वरण प्रस्तार पूछै, तितरां नुं अखरा री संख्या कर उतरा हीज कोठा करीजै, मेर रो आकार हुवै। जिण रीत थी ऊपर एक कोठ करने नीचे खण राखण इण विध छाइस पर्यंत तांई मांडीजे तद छाइस हीज खण रहे। इण विध थी मेर रो जंत्र मांडीजे नै पछै आदी रै विखै

नै अंत रै विखे एक एक आंक दीजै। आदी अंत एका आंक थी भरीजै। पछै अस्व गति कीजै। अस्वगतिका सुं घोडा री चाल री गति मांडीजै। तो घोडो किणै रीत सुं चालै जिका साख **संख्या निरणै ग्रंथ** मांहे कही छै। **संख्या निरणै कवि चंद वरदाई** रो कहियो छै।

दोहा

"पंखी गति त्रिहुं पाइ पढि, चिहुं पग्गां चौडोल।"
पंखी इसौ नांम घोडा रो कहियौ सो रासा थी लहियो।

साख रासा री, संजोगता समइया मांहे—

निमांणां निहस्सै किनां पंख नस्सां।
उकस्सै जांणि काली उसस्सां॥

आ साख रासा री। चौडोल नांम हाथी रो छै। जिका साख वारहट सुदरसणउ डिंगल थी कहै,

सोरठा माहे

"तेजा नीसांणांह, चौडोलां पर कमि चतुर।"

अथ गीत काछौ

दोहा—

मुनि मित मत्ता पांच थळ, पांडू मित खट पाय।
विश्रामां कंठ एण विध, काछौ गीत कहाय॥

वार्ता

मत्ता जिम कही तिम ही कीजै। पिण एक मांहे व्यंग जाणणौ, सो कहे। इण मांहे प्रथम तोजी तुकमेल राखीजे। दूजै नै चौथे मेल कीजै।

यथा

मारकां दल रांम मेल अरि उखेलै, पाज जेले पाथरां।
मुज चाडि मिया कोप किया, जागिया रिण जंग॥
बदर बडाला भड़ भुजाला, करण चाला कांम रा,
वरियाम वंका लियण लंका, अमंका अणभूंग॥ 1॥
परठ पाथर गिवर सायर, विसम थरहर पाज।
आवीयौ सेना रांमजे ना धजा केना धज्ज॥
धज रथ पतंका आण वंका, जुडे लंका काज।
जलजला विबा कर उलंघा, सेन संघा मज्ज॥ 2॥
दांणव कटाला पड़ अटाला, भटालां भूगोल।
पय लटां लट्टां चटां चट्टां पाछटां गज घंट।
गाहटा घट्टां दरड भट्टां, खग-झटां रिण बोल।
गदा मुदगर झरर पाखर, सधई घरहर घंट॥ 3॥

जो कंध भग्गा व्रख्य लग्गा, किनां खगां खेत ।
दुख टाल् संभं, देव वंभं, मधर खंभं भंज ।।
धर धमळ मंगळ, कळळ लहू कळ, भळळ झळीयळ देत ।
किल् खळळ निरमळ मळळ परमळ, हळळ मलीयळ कंज ।। 4 ।।

अथ उडिंगल नाम माला लिख्यते

जोधा नाम

सिंह सूर सामंत जोध भुजपाल घड़ां भिड़ ।
भिड़ै फौज गाहणा वेढ भीचां जोधार गिड़ ।।
अणी भमर वधि समर अछरवर हंमा अखां
सत्रल-दलां-गाहणा सूरमंडळ-भिद सखां
रूप फौज भूप आगल् रहे कवि पिंगल् अे नाम कहि ।
जोधार जिमा भीमेण ज्यों महाअडिग कमधांण महि ।।

गीत

अथ सावझड़ौ

आख आद तुक आंचली, तीन बीम कळ तास ।
चव तुक दूजी त्री चतुर, जोड वीम कळ जास ।

यथा

तू अफेर आ करीठ, पीठ धर है-थट्टां ।
घोर नित्रीठ तूं रीठ पडनां धट्टां ।।

यथा

तूं गरीठ गाहणौ, भीठ भर खग झटां ।
भार भर भांजणौ देख अरियण भटां ।। 1 ।।
धार सरसी धरी जूं सहरां धवळ तूं ।
अगम भाराविया, दुगम भुज अवल तूं ।।
पारकर विकटधर जिमौ पांण धार तूं ।।
महा अनमंध कर अभिनमां माल तूं ।। 2 ।।
मेर जिम भार वर धारीयां मरद तूं ।।
भुजवरां भारधारी व्रंह्मांड तूं ।
बांधण चौ अगड़ बांधणें वंध तूं ।।
अवतारी पुरख नमौ अनमंध तूं ।। 3 ।।
गुमर धारीयां विरद धर ग्रद्ध चौ ।
नमौ जिण सिद्ध नुं विभोकर निद्ध चौ ।।
अमल जस धारियां धमल् अणसिद्ध चौ ।।
धवां जिम छत्र रहि, देवरा सिद्ध चौ ।। 4 ।।

संदर्भ-ग्रंथ-सूची

कुशललाभ द्वारा विरचित रचनाएँ

1. **ढोला मारवणी री चौपई**—लि० का० सं० 1639 (हस्तलिखित—डॉ. ब्रजमोहन जावलिया का संग्रह, उदयपुर)
2. **माधवानल कामकंदला चौपई**—डॉ० ब्रजमोहन जावलिया निजी संग्रह
3. **भीमसेन राजहंस चौपई**—लालभाई दलपतभाई इन्स्टीट्यूट ऑफ़ इंडोलोजी—अहमदाबाद, ग्रंथांक—1217
4. **पार्श्वदशभव स्तवन**—ला. द. इन्स्टीट्यूट ऑफ इंडोलोजी, अहमदाबाद, ग्रंथांक 975
5. **अगड़दत्त रास**—भण्डारकर ओरियन्टल रिसर्च इन्स्टीट्यूट, पूना—ग्रंथांक 605
6. **जगदंबा छंद**—राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान, उदयपुर, ग्रं०, 602/1423
7. **थंभण पार्श्वनाथ स्तवन**—आचार्यश्री विनयचंद्र ज्ञान भंडार, जयपुर, ग्रंथांक—37/80, आनंद काव्य महोदधि, मौक्तिक 7—बम्बई
8. **नवकार मंत्र छंद**— ,, ,, ,, ,, ग्रंथ 37/31
9. **गौडी पार्श्वनाथ छंद**—रा. प्रा. वि. प्रतिष्ठान, जोधपुर ग्रं० 6060
10. **तेजसार रास**— ,, ,, ,, ,, ग्रं० 26546
11. **तेजसार रास**—जयमंदिर कृत—अनूप संस्कृत पुस्तकालय, बीकानेर ग्रंथांक 1545
12. **गुण सुन्दरी चौपई**—दिगम्बर जैनमंदिर दीवानजी, कामां (भरतपुर) बस्ता सं० 270
13. **जिन पालित जिन रक्षित रास**—महिमा भक्ति जैन ज्ञान भंडार, बड़ा उपाश्रय, बीकानेर, ग्रंथांक 2570
14. **शत्रुंजय यात्रा स्तवन**—अभयजैन ग्रंथालय, बीकानेर—ग्रंथांक 7744
15. **पूज्य वाहण गीत**—ऐतिहासिक जैन काव्य संग्रह—(सं०) अगरचंद भँवरलाल नाहटा, बीकानेर।
16. **दुर्गा सातसी**—अनूप संस्कृत पुस्तकालय, बीकानेर—ग्रं० 68 (घ)
17. **पिंगल शिरोमणि**—राजस्थानी शोध संस्थान, जोधपुर
18. **स्थूलिभद्र छत्तीसी**—अभय जैन ग्रंथालय, बीकानेर—ग्रं० 87/4209

सहायक ग्रन्थ

1. **ढोला मारू रा दूहा**—नागरी प्रचारिणी सभा, काशी—सं० 2011
2. **ढोला मारू रा दूहा में काव्य सौष्ठव, संस्कृति और इतिहास**—डॉ. भगवती लाल शर्मा, अर्चना प्रकाशन, जयपुर 1970 ई०
3. **कुशललाभ, व्यक्तित्व और कृतित्व**—डॉ. मनमोहन स्वरूप माथुर
4. **कुशललाभ के कथा-साहित्य का लोकतात्त्विक अध्ययन**—डॉ. रुक्मिणी वैश्य
5. **जैन भक्ति-काव्य की पृष्ठभूमि**—डॉ. प्रेम सागर जैन
6. **जैन कथाओं का सांस्कृतिक अध्ययन**— श्रीचन्द जैन
7. **जैन साहित्य और इतिहास**—नाथूराम प्रेमी
8. **प्राकृत—जैन कथा-साहित्य**—जे. सी. जैन
9. **वसुदेव हिण्डी**—एल. डी. इन्स्टीट्यूट ऑफ इंडोलोजी, अहमदाबाद
10. **जैन कथा साहित्य**—प्रो. फूलचन्द सारंग
11. **ढोला मारू**—प्रो. कृष्ण बिहारी सहल
12. **ढोला मारू रा दूहा**—प्रो. शंभुसिंह मनोहर
13. **राजस्थानी भाषा और साहित्य**—डॉ. मोतीलाल मेनारिया
14. **राजस्थानी भाषा और साहित्य**—डॉ. हीरालाल माहेश्वरी
15. **प्रबन्ध पारिजात**—रावत सारस्वत
16. **संदेश रासक** अब्दुल रहमान (सं० हज़ारीप्रसाद द्विवेदी तथा विश्वनाथ प्रसाद त्रिपाठी), राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली
17. **प्रिथीराज राठौड**—रावत सारस्वत, साहित्य अकादेमी, नयी दिल्ली
18. **दुरसा आढा**—रावत सारस्वत, साहित्य अकादेमी, नयी दिल्ली
19. **जाम्भोजी**—डॉ. हीरालाल माहेश्वरी, साहित्य अकादेमी, नयी दिल्ली
20. **आनन्द काव्य महोदधि**—(प्र०) सेठ दलीचन्द लालभाई फंड, झवेरी बाज़ार, मुंबई, 1926 ई०
21. **माधवानल कामकंदला प्रबन्ध**—गायकवाड़ ओरियन्टल सीरिज, बड़ौदा, 1942

22. **ऐतिहासिक जैन काव्य संग्रह**--अगरचन्द नाहटा, भँवरलाल नाहटा—बीकानेर
23. **जैन गूर्जर कविओ**—मोहनलाल दलीचन्द देसाई
24. **भारतीय प्रेमाख्यान की परम्परा**—परशुराम चतुर्वेदी
25. **प्राकृत कथा साहित्य और उसकी विशेषताएँ**—मरुधर केशरी अभिनन्दन ग्रन्थ
26. **मध्ययुगीन प्रेमाख्यान**—डा० श्याम मनोहर पाण्डेय
27. **राजस्थानी साहित्य की गौरवपूर्ण परम्परा**—अगरचन्द नाहटा
28. **राजस्थान के जैन सन्त व्यक्तित्व और कृतित्व**—डॉ. कस्तूरचन्द कासलीवाल
29. **राजस्थानी साहित्य : कुछ प्रवृत्तियां**—डॉ. नरेन्द्र भानावत

पत्र-पत्रिकाएँ :

परम्परा, मरुभारती, मरुवाणी, राजस्थान भारती, वरदा, शोध पत्रिका, मज्झमिका।

●●

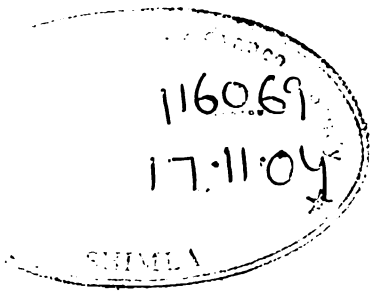

राजस्थानी के सुविख्यात कवि एवं रचनाकार कुशललाभ के जीवन के बारे में प्रामाणिक स्रोतों का अभाव है। उनके रचना-साक्ष्य से इतना स्पष्ट है कि वे सोलहवीं शती में विद्यमान थे। सन १५४३ ई० में उनके द्वारा अपने लिए 'हंसदूत' की प्रतिलिपि तैयार करने की सूचना मिलती है और यह भी पता चलता है कि वे काफ़ी कम उम्र में, पण्डित पदवी से विभूषित और मुनि पद पर प्रतिष्ठित हो चुके थे।

कुशललाभ सर्वप्रथम सुयोग्य शिष्य के रूप में और फिर उच्चकोटि के अध्येता तथा सम्मानित गुरु के रूप में मान्य हुए। उन्होंने अपनी सर्जनात्मक प्रतिभा से अपने पाठकों एवं प्रशंसकों को चमत्कृत कर दिया था। माधवानल कामकन्दला चौपई, ढोला मारवणी चौपई, तेजसार रास, अगड़दत्त रास, महामाई दुर्गा सातसी तथा स्थूलिभद्र छत्तीसी जैसी महत्त्वपूर्ण काव्य-कृतियों के अलावा उनकी और भी कई रचनाएं पर्याप्त प्रतिष्ठित हैं। पिंगल या छंद शास्त्र जैसे दुरूह विषय पर 'पिंगल शिरोमणि' नामक ग्रंथ की रचना कर उन्होंने काव्य-सर्जना के साथ-साथ काव्य-शास्त्रीय प्रतिभा का भी परिचय दिया। उनकी कृतियों में वीर-शृंगार का पुट तो है ही वैराग्य के साथ-साथ सदाचार-सप्रेरित जीवनयापन का संदेश भी है और इनमें लोकप्रियता के सारे गुण निहित हैं।

श्री ब्रजमोहन जावलिया ने प्रस्तुत विनिबंध में कुशललाभ के जीवन-वृत्त के अज्ञात पहलुओं पर प्रामाणिक ढंग से प्रकाश डाला है और उनकी रचनाओं का समुचित मूल्यांकन प्रस्तुत किया है।

आवरण चित्र :
ढोला मारू रा दूहा की
सचित्र पाण्डुलिपि से अनुकृत

Library IIAS, Shimla
H 817.509 2 K 968 J
00116069

मूल्यः पन्द्रह रूपये